श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष—७ जून—१९८८ अंक—६

ATTENTION
PAGE NO 09.....

WRITER'S COPY

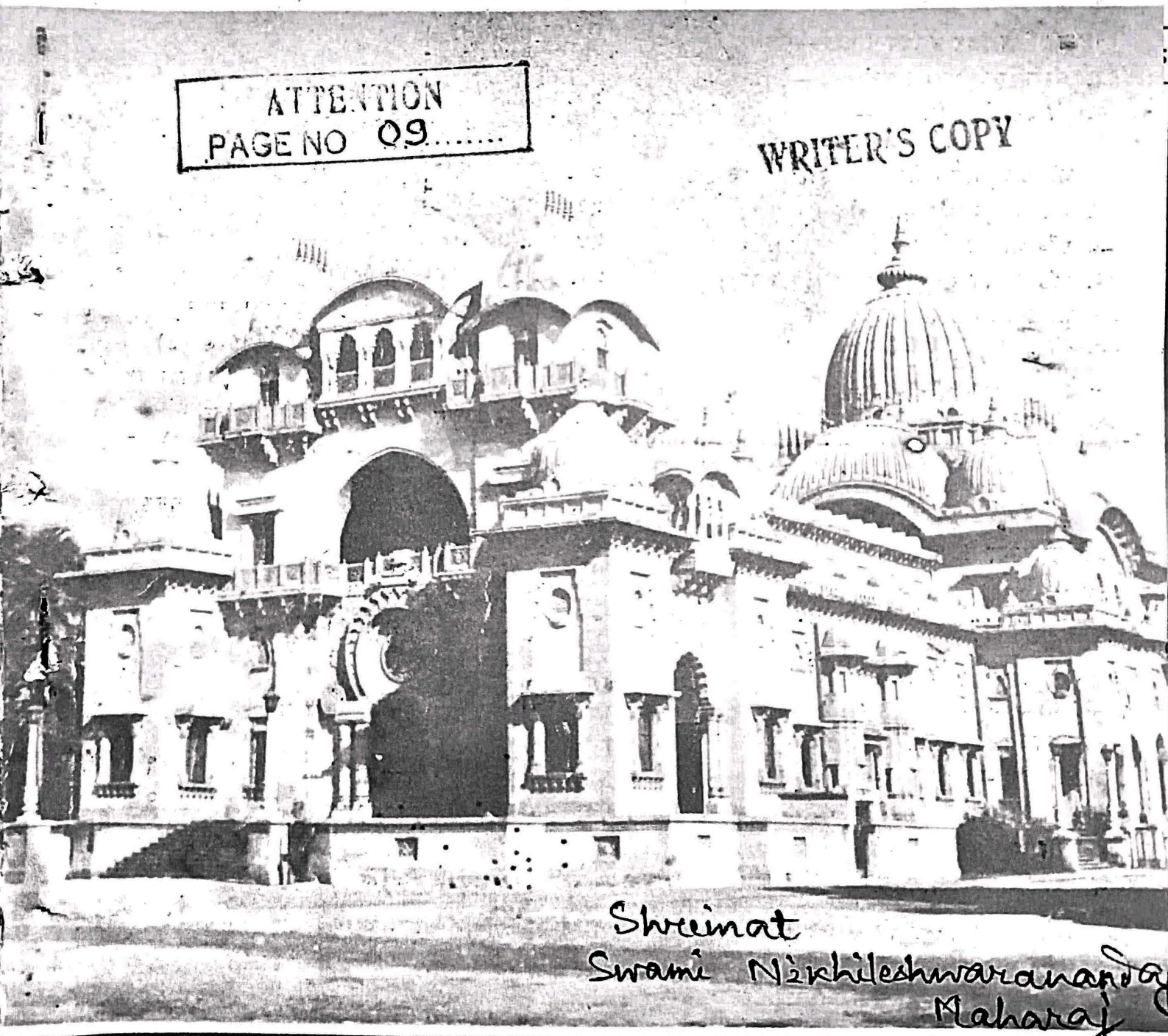

Shreemat
Swami Nikhileshwaranandaji
Maharaj

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१. श्रीराम विलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४ एम० एम० नायालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—
लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गठोडिया—अपर बाजार (राँची)
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (कर्नाटक)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति--अमरावती, महाराष्ट्र
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ठनढ़निया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे—धमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री बिनुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण पत्ता—जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेई—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. डॉ० श्यामसुन्दर बोस, दूधपुरा बाजार, समस्तीपुर

इस अंक में

		पृष्ठ
१ श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. भजन		२
३. मैं प्रेम हूँ	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. श्रीरामकृष्ण के चरण कमल में	स्वामी अमलेशानन्द	७
५. देश भक्ति के आँसू	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	९
६. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के जीवन और साहित्य में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द	प्रो० शंकरी प्रसाद बसु	१२
७ आँसुओं के लोक में (कविता)	श्री सुरेश कुमार मिश्र	२०
८. साधना के अन्तराय (३)	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	२१
९. भारतीय नारी : पाश्चात्य सम्पर्क	डॉ० आरती श्रीवास्तव	२५
१०. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२८
११ समाचार एवं सूचनाएं		३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ जून—१९८८ अंक—६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	१० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

संसारी व्यक्ति में ज्ञानी पुरुषों के समान ज्ञान और बुद्धि हो सकती है, वह योगियों की तरह कष्ट-क्लेश सह सकता है, और तपस्वियों की भाँति त्याग कर सकता है; परन्तु उसके ये सारे श्रम व्यर्थ ही होते हैं, क्योंकि उसकी शक्तियाँ गलत दिशा में प्रवाहित होती हैं, वह अपनी सारी शक्ति नाम-यश और धन कमाने में ही लगाता है—भगवान् के लिए नहीं।

(२)

मैले दर्पण में सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्बित नहीं होता, स्वच्छ दर्पण में ही वह प्रतिबिम्बित होता है। मायामुग्ध, अशुद्ध और अपवित्र हृदयवाले व्यक्ति ईश्वरीय महिमा का प्रकाश नहीं देख पाते, विशुद्ध-हृदय व्यक्ति ही उसे देख पाते हैं। इसलिए विशुद्ध बनने का प्रयत्न करो।

(३)

सादे काँच पर फोटो नहीं उतरती, परन्तु काँच पर रसायन लगा होने पर फोटो खींची जा सकती है। इसी तरह, हृदय में भक्तिरसायण लगा हो तो ही उस पर ईश्वरीय तत्वों की छाप पड़ सकती है।

(४)

अद्वैत ज्ञान को आँचल में बाँधकर जो चाहो करो, तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा।

(५)

जिस प्रकार एक ही फल से छिलका, गूदा और बीज आते हैं, उसी प्रकार जीव, जगत, जड़ और चेतन सभी पदार्थ एक ही ईश्वर से आते हैं।

भजन

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं॥
या देही कौ गरब न करियै स्यार-काग गिध खैहैं।
तीनमि मैं तन कृमि, कै विष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहैं॥
कहँ वह नीर, कहाँ वह शोभा, कहँ रँग रूप दिखैहैं।
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं॥
घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होई धरि खैहैं।
जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी देव मनैहैं॥
तेई लै खोपड़ी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं।
अजहुँ मूढ़ करौ सत संगति, संतनि मैं कछु पैहैं॥
नर बपु धारि नाहिं जन-हरि कौं, जम की मार सो खैहैं।
सूरदास भगवंत भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहैं॥

— महाकवि सूरदास

(२)

मन पछितैहैं अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम-हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहिं तजेंगे पामर! तू न तज अबही ते॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते॥

—गोस्वामी तुलसीदास

मैं प्रेम हूँ

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

मेरे मकान के सामने सड़क काट कर नगरपालिका ने एक नाला बना कर, उस पर पत्थर की पट्टी डाल दी थी। वह पट्टी सड़क की सतह से ऊँची थी—करीब पाँच-छः इंच। स्वभावतः ठोकर बन गयी थी। सवारियों के आने जाने में कष्ट होता। मोटर, स्कूटर, रिक्शा चालकों को परेशानी होती। पैदल राहियों को ठोकरें लगतीं। एक रात को अँधेरे में एक रिक्शा उलट गया। उस पर सवार एक महिला अपने बच्चे के साथ गिरकर बेहोश हो गयी थी। एक सुबह को, एक बूढ़ा बुरी तरह ठोकर खाकर बगल के नाले में गिर गया। मैंने अपना फाटक खोला तो उसे नाले में ही पड़ा पाया। उसके पाँव टूट गये थे। किसी तरह रिक्शा पर लादकर उसे उसके घर पहुँचाया और फिर इधर तीन दिन पहले एक युवती ठोकर खाकर गिर गयी। चूँकि वह युवती थी, कोई उसे उठा भी नहीं रहा था। वैसे भीड़ इकट्ठी हो गयी थी।

मुहल्ले के लोगों से इस मसले पर बातें होती थीं। सभी महसूस करते थे कि पट्टी को दोनों ओर ढालुआ किया जाना चाहिए। पर कोई करता न था। मैंने कुछ मजदूरों को लेकर पत्थर की पट्टी के दोनों ओर ईंटे की सूर्खी गिरवा दी। घर के दो चार व्यक्तियों के साथ मिलकर उसे समतल किया। पानी से पटाकर उसे बैठा दिया। पट्टी के दोनों ओर ढालुआपन आ गया। लोग देखते रहे। तभी एक सवारी गुजरी। उसे निरापद गुजरते देखकर मन, अपना ही मन प्रसन्न हो गया। अब रिक्शे, कार, स्कूटर वालों को सहज रूप में गुजरते देखकर प्रसन्नता होने लगी। राहियों के सुख को देखकर मैं सचमुच आह्लादित हो झूम-झूम उठता।

मैंने कोई बड़ा काम किया था सो बात नहीं है। बात केवल यह है कि मैंने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि दूसरों के लिए निःस्वार्थ भाव से किया गया कार्य स्वयं के लिए आनन्द दायक होता है। हम जब कुछ देते हैं, और बदले में एक धन्यवाद तक की भी कामना नहीं होती, तब हमें इतना कुछ मिलता है जिसे हम सँभाल नहीं सकते। सचमुच प्रेम का प्रतिदान नहीं होता।

बाहरी जगत का विधान यह है कि इकट्ठा करो, बचाओ तो वह वस्तु बढ़ेगी; औरों को दो, तो वह वस्तु घटेगी। लेकिन हमारे अन्तर्जगत का विधान यह है कि बचाओ, इकट्ठा किये रहो, तो वह वस्तु सड़ती रहेगी, नष्ट हो जायगी और तुम्हें भी सड़ा डालेगी। लुटाओ, दो, देते रहो तो वह वस्तु और भी बढ़ेगी, बढ़ती रहेगी। मन का गणित, धन के गणित के नियम से नहीं चलता।

धन का गणित बड़ा टेढ़ा है, दगघोंटू है। धन के लिए मिहनत करो, जी-तोड़ परिश्रम करो, चोरी-बेईमानी तक करो, कृपण बनो तब कहीं जाकर धन इकट्ठा होता है। धन बढ़ता जाता है तो

शरीर टूटता जाता है और मन मरता जाता है। आत्मा बिलखती रहती है।

मन के लिए मिहनत करने की जरूरत नहीं। मन का गणित बड़ा सीधा है। मन केवल दो दूसरों को और देखो क्या रस है इस दान में। करोड़ों रुपयों से यह रस खरीदा नहीं जा सकता। इस रस की एक बूंद के लिए लोग आजीवन तड़प कर रह जाते हैं। यह रस महलों में रहने से, फ्रीज में रखे शीतल पेय के पीने से या विलासिता और भोग के अन्य उपकरणों से प्राप्त नहीं होता। यह रस है—आत्मदान का रस, हृदय का रस, प्रेम का रस।

यह प्रेम कहाँ है? यह प्रेम तुम स्वयं हो। मैं ही यह प्रेम हूँ। मैं स्वयं प्रेम हूँ। मेरा स्वरूप ही प्रेम का है। मैं प्रेम का तीर्थराज हूँ। मैं प्रेम का आश्रम हूँ। प्रेम के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं हूँ। प्रेम के अतिरिक्त मैं और कुछ हो ही नहीं सकता। प्रभु ने मेरे रूप में प्रेम को ही आकार दिया है। मुझे यह अनुभव करना चाहिए। मुझे इसे महसूसना चाहिए।

जब हम प्रेम में होते हैं, अपने स्वरूप में होते हैं, हम आनन्द में होते हैं। जब हम प्रेम से परे होते हैं, हम दुःख में होते हैं। ऋषियों ने प्रार्थना की थी--तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय—प्रभु! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल, असत् से सत् की ओर ले चल।' इससे ऊँची प्रार्थना कोई और हो नहीं सकती। मानव के आकुल मन की यह एक नितान्त करुणा भरी प्रार्थना है। किन्तु चाहें तो इन तीनों को एक में ही हम ऐसे भी व्यक्त कर सकते हैं—'प्रभु, मुझे ईर्ष्या, उपेक्षा, तिरस्कार और घृणा से प्रेम की ओर ले चल।' प्रेम ही प्रकाश है, प्रेम ही सत् है, प्रेम ही अमृत है।

लेकिन हम प्रेममय क्यों नहीं होते? अगर हमारा स्वरूप ही प्रेममय है तो संसार में इतनी घृणा क्यों, इतनी हिंसा क्यों, इतनी लूटपाट क्यों? उत्तर यही है—हम अपने स्वरूप को भूल बैठे हैं। हम अपनी प्रत्यभिज्ञा खो बैठे हैं। और इसलिए हम इतने दीन, इतने भयभीत और इतने दयनीय हो गये हैं। जहाँ प्रेम का लवण-रस नहीं होता वहाँ जीवन स्वादहीन और नीरस और कटु हो ही जाता है।

आप कह सकते हैं, अरे प्रेम कौन नहीं करना चाहता? कौन है ऐसा जो प्रेम की गंगा में डुबकी लगाना नहीं चाहता? और कौन-कौन है ऐसा जिसने किसी को प्यार नहीं किया? क्या हम अपने बच्चे को, अपने भाई-बहन को, अपने माँ-बाप को और अपनी पत्नी या प्रेयसी को प्यार नहीं करते? फिर भी हमारा जीवन दुःखी क्यों है? प्रश्न अपनी जगह पर बिल्कुल ठीक है।

दुःख का कारण यह है कि हमने आसक्ति को प्रेम मान लिया है। आसक्ति से सुख मिलता है, आनन्द नहीं। क्योंकि हर सुख का अंत दुःख में होना ही है। हम अपनी पत्नी, अपने बच्चे, अपने सगे-सम्बन्धियों और मित्रों, यहाँ तक कि प्रेमिका के प्रति भी आसक्त हैं। और, अक्सर हम धार्मिक और आध्यात्मिक कार्यों में भी 'आसक्त' रहते हैं। फिर बाह्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या? कार, फ्रीज, टी. वी. आदि से आसक्त होना तो नयी बात नहीं है। और हम किसी वस्तु के प्रति आसक्त होते ही इसलिए हैं कि उससे सुख मिलता है। आसक्ति सारे सुखों की जननी प्रतीत होती है। किन्तु वही दुःखों की भी जननी है। आनन्द अनासक्ति से मिलता है। किन्तु अनासक्त होने का अर्थ कठोर और पाषाण-

हृदय होना नहीं है। दीवार अनासक्त है। लेकिन वह हमारा आदर्श नहीं हो सकती। क्योंकि वह किसी से प्यार कर ही नहीं सकती। हम प्रेमी होते हुए भी अनासक्त रह सकते हैं। और सच तो यह है कि एक अनासक्त प्रेमी ही सच्चे आनन्द में प्रतिष्ठित हो सकता है।

लेकिन हम प्रेम करते हैं—प्रेम पाने के लिए। हमें प्रेम मिले—सहज, अनायास, यह तो ठीक है। पर हम प्रेम के प्रतिदान में प्रेम चाहें, या कुछ और, यह प्रेम नहीं, व्यापार है। ऐसी स्थिति में हम प्रेमी नहीं, एक भिखारी की हालत में हो जाते हैं। और जगद्गुरु स्वामी विवेकानन्दजी के शब्दों में—"भिखारी कभी सुखी नहीं होता। उसे केवल भीख ही मिलती है और वह भी दया और तिरस्कार से युक्त; उसके पीछे कम से कम यह कल्पना तो अवश्य ही होती है कि भिखारी एक निकृष्ट जीव है। जो कुछ वह पाता है, उसका सच्चा उपभोग उसे कभी नहीं मिलता।

"हम सब भिखारी हैं। जो कुछ हम करते हैं, उसके बदले में हम कुछ चाह रखते हैं। हमलोग हैं व्यापारी। हम जीवन के व्यापारी हैं, शील के व्यापारी हैं, धर्म के व्यापारी हैं। अफसोस! हम प्यार के भी व्यापारी हैं।.....व्यापार तो आइने में मुँह देखने के समान हैं। तुम्हारा प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता है। तुम मुँह बनाओ और आइने में मुँह बन जाता है। तुम हँसो और आइना हँसने लगता है। यह है खरीद और बिक्री, लेन और देन।"

यह व्यापारी रूप ही हमारे प्रेम को दुःख में बदल देता है। हमारे प्रेम का अर्थशास्त्र ही गलत हो गया है। वह यह है कि हमारे प्रेम के मूल में होती है आसक्ति, होती है वासना। और वासना बाँधती है। वासना-युक्त प्रेम बाँधता है। वासना-मुक्त प्रेम मुक्त करता है, उबारता है संसार के समस्त दुःखों से। इसी से स्वामीजी हमें सचेत करते हुए कहते हैं—"हम फँस जाते हैं, कैसे? उससे नहीं जिसे हम देते हैं, वरन् उससे जिसके पाने की हम अपेक्षा करते हैं। हमारे प्यार के बदले में हमें मिलता है दुःख। इसलिए नहीं कि हम प्यार करते हैं, वरन् इसलिए कि हम बदले में चाहते हैं प्यार। जहाँ चाह नहीं है, वहाँ दुःख भी नहीं है। वासना, चाह—यही दुःखों की जननी है। वासनाएँ सफलता और असफलता के नियमों से बद्ध हैं। वासनाओं का परिणाम दुःख ही होता है।

"अतएव, सच्चे सुख और यथार्थ सफलता का महान् रहस्य यह है कि बदले में कुछ भी न चाहने वाला बिल्कुल निःस्वार्थी व्यक्ति ही सबसे अधिक सफल व्यक्ति होता है।"

हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने भीतर के प्रेम का मुक्त वितरण करें, हमें यह अनुभव करना है कि देना ही हमारा प्रकृत स्वरूप है। और प्रेम का दान अहेतुक होना चाहिए, बिना शर्त होना चाहिए। "कुछ भी न माँगो, बदले में कोई चाह न रखो। तुम्हें जो कुछ देना हो, दे दो। वह तुम्हारे पास वापस आ जायगा; लेकिन आज ही उसका विचार मत करो। वह हजार गुणा हो वापस आयेगा, पर तुम अपनी दृष्टि उधर मत रखो। देने की ताकत पैदा करो। दे दो और बस काम खत्म हो गया। यह बात जान लो कि सम्पूर्ण जीवन दान स्वरूप है; प्रकृति तुम्हें देने के लिए बाध्य करेगी। इसलिए स्वेच्छ पूर्वक दो। .....तुम जितना ही अधिक दोगे उतना ही अधिक तुम्हें वापस मिलेगा। जितनी ही जल्दी इस कमरे की हवा तुम खाली करोगे उतनी ही जल्दी यह बाहरी हवा से भर जायगा। पर यदि तुम सब दरवाजे-खिड़कियाँ और रंध्र बन्द कर लो, तो अन्दर की हवा अन्दर रहेगी जरूर, किन्तु

बाहरी हवा कभी अन्दर नहीं आयेगी, जिससे अन्दर की हवा दूषित, गंदी और विषैली बन जायगी। .....इसलिए भिखारी मत बनो। अनासक्त रहो।"

प्रेम दो। प्रेम माँगो नहीं। प्रेम कोई भीख में दी जाने वाली वस्तु नहीं है। तुम प्रेममय हो। अपना प्रेम लुटाते रहो। बिना भेद के, बिना सुपात्र-कुपात्र के विचार के। हवा जैसे सब के लिए बहती है; सूरज की किरणें जैसे सब पर बरसती हैं, फूल की सुगंध जैसे सबके लिए फैलती है वैसे ही तुम्हारा प्रेम भी सबके लिए हो—निर्बंध। और इस तरह मुक्त हो जाओ। उन्हें धन्यवाद दो जिन्होंने तुम्हारा प्रेम स्वीकार किया। तुम्हें मुक्त होने का अवसर दिया। उन्हें आशीर्वाद दो जिन्होंने तुम्हारे दान का पात्र होना स्वीकारा।

बरसते बादल, सरसती वायु, पल तन्मय,
बोल रे। कुछ खोल गाँठें, बाँट कुछ संचय।
बाँट रे! जग माँगता है आज रस की भीख,
भरे दिल ओ! भरे बादल से क्रिया यह सीख।

\+ + +

दम्य है यह उच्चता, रे! रिक्त है यह धूम
उतर भू पर, प्रणय की हरियालियों को चूम
आज छा ले सृष्टि को सजल भार उतार
कामना हो फलवती, हो फूल का संसार
मुक्त हो तू, महत् हो तू ज्यों अमित आकाश
छोड़ यह संकोच, मन रे! तोड़ मिति के पाश।

बादल की तरह तुम्हें निर्विचार बरसना होगा। बरसना ही होगा। बरसना बादल की विवशता है। प्रेम लुटाना तुहारी विवशता है। वे जो दीन हैं, दुःखी हैं, दुर्बल हैं; असहाय हैं, निरुपाय हैं—उन्हें भर दो अपने प्रेम की रस धार से और उन्हें धन्यवाद दो।

थियोसॉफ़िकल सोसाइटी की जन्मदात्री मैडम ब्लैवट्स्की के जीवन की एक घटना है। वे एक दिन ट्रेन से यात्रा कर रही थीं और रास्ते में अपने झोले से कुछ निकाल-निकाल कर खिड़की से फेंकती जा रही थीं। यात्रियों ने हैरानी से उन्हें पूछा - 'आप क्या फेंक रही हैं इस तरह?' उन्होंने उत्तर दिया—'फूलों के बीज'। 'मगर क्यों?'—यात्रियों ने पूछा। मैडम ब्लैवट्स्की ने कहा—'बरसात के दिन आ गये हैं। आकाश में काली घटाएँ छाने लगी हैं। जल्दी वर्षा होगी। फिर ये बीज फूल बन कर खिल उठेंगे। तब कितना अच्छा दृश्य हो जायगा रेल मार्ग के दोनों किनारे!" यात्रियों ने पुनः जिज्ञासा की—"क्या आप इस मार्ग से बार-बार आया-जाया करती हैं?" मैडम ने उत्तर दिया—'नहीं, पहली बार जा रही हूँ। शायद फिर कभी इधर से इस जीवन में गुजर भी न सकूँ।' यात्रियों ने हैरानी से पूछा—'फिर आपको क्या फायदा होगा? आप तो उन खिले फूलों को देख भी न सकेंगी। उनकी सुगंध भी न ले सकेंगी।" श्रीमती ब्लैवट्स्की ने कहा—'क्यों? मैं न देख सकूँगी, कोई तो देखेगा। मैं सुगंध न ले सकूँगी, दूसरे तो लेंगे। मैं उनकी आँखों से ही देखूँगी। मैं उनकी नाक से ही सूँघूँगी। सब आँखें मेरी ही हैं। सबकी नाक मेरी ही नाक है। उन फूलों को मैं देखूँ या कोई और देखे क्या फर्क

पड़ता है ?" यह है प्रेम की दृष्टि। प्रेम में आत्म-विस्तार हो जाता है। संकीर्णता की दीवारें ढह जाती हैं। सीमा टूट जाती है। मैं प्रेम हूँ। मैं सब में हूँ। सब मुझमें हैं। मैं अनन्त आकाश हूँ। समस्त घटाएँ मुझमें छायी हुई हैं। सारे शब्द, सारे संगीत मुझमें गूँज रहे हैं। मैं असीम सागर हूँ। सभी नदियाँ मुझमें समायी हुई हैं। सभी रस-तरंगें मेरी हैं। मैं प्रेम हूँ, सभी मेरे हैं। सभी मेरे अपने हैं। कोई गैर नहीं है। कोई मुझसे अलग नहीं हैं। मैं इतना विस्तृत हूँ, इतना असीम हूँ, इतना समग्र हूँ। मैं अनुभव करता हूँ—

No man is island, no man stands alone.
Each man's joy is joy to me, each man's grief is my own;
+ + +
Each man is my brother, each man is my friend
I saw the people gather,
The song they were singing, is ringing in my heart.

कोई व्यक्ति किसी से अलग नदी के द्वीप जैसा नहीं है। हर व्यक्ति का सुख मेरा सुख है। हर आदमी का दुःख मेरा दुःख है। हर व्यक्ति मेरा भाई है। हर व्यक्ति मेरा मित्र है। दूसरे के गाये गीत मेरे हृदय में अनुगुंजित हो रहे हैं। हम सब एक ही डोर में बँधे हैं। यही है प्रेम की अनुभूति। यही है प्रेम-दृष्टि। यही है प्रेम का विज्ञान। यही है प्रेम का प्रतिदान। यही है मेरा रूप—प्रेम का रूप। मैं प्रेम हूँ। मैं केवल प्रेम हूँ। जय श्रीरामकृष्ण! जय स्वामीजी!!

श्रीरामकृष्ण के चरण-कमल में

—स्वामी अमलेशानन्द
रामकृष्ण मिशन, मैसूर

(विवेक शिखा में प्रकाशनार्थ प्रेषित स्वामी अमलेशानन्दजी के मूल बंगला लेख 'रामकृष्ण चरण सरोजे' का हिन्दी अनुवाद किया है—इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका डा० शैल पाण्डेय ने—सं०)

थोड़ा सा अवसर!

कर्ममुखर जीवन से छीन लेना एक टुकड़ा अवकाश! खोये हुए, समाप्त-प्राय जीवन से निचोड़ लेना प्राणों का रस। थोड़े से ही मन परिपूर्ण। आगामी दिवस के अविश्रान्त दौड़-भाग हेतु रसद-संचय।

"ओ रे कौन कहाँ हो, आओ।"—युग-युगान्तर के आह्वान ने गत शताब्दी के किसी एक पुण्य क्षण में, युगमानव के आकुल स्वर में वाणी का रूप प्राप्त किया था। वह अशरीरी वाणी आज भी आकाश-वातास में फुसफुसाती है आओ···आओ···मेरे पास है, आओ···!' चंचल पवन के घूर्णावर्त में घूमती फिरती है वही व्याकुल पुकार, अनन्त पुकार! आना नहीं हो सका!

सुनने का समय नहीं मिला! अत्यन्त क्लान्त जीवन की बुझती हुई अनन्त आशाएँ मन को विकल कर देती हैं। मरीचिका की तरह सरक-सरक जाता है अशान्त आकांक्षा का रंगीन हस्त-संकेत। शून्य

में मिल जाते हैं कामना वासना के हजारों बुलबुले।

हो सकता है किसी दिन पुकार आ पहुँचे। जगत-यंत्र में क्लेश-कष्ट से पिसा हुआ, हताशा और व्यर्थता के भार से आक्रान्त अमृत-पुत्र एक दिन दृष्टि घुमाकर देखे। देखना ही पड़ता है, नहीं देखने का उपाय नहीं है। "जो आन्तरिक हैं, उन्हें यहाँ आना ही होगा।" इसी से एक दिन आना ही पड़ता है उन्हें, जिनके हृदय में जमी हुई है अनेकों न प्राप्त कर पाने की हताशा, जिनके अन्तर में जगी है अन्तरतम को पाने की एकान्त अभिलाषा। संसार की मरुभूमि में पथ भूला हुआ तृष्णार्त पथिक जब शीतल जल की आकांक्षा में कातर होता है, तभी दृष्टि फेरता है उनकी ओर। मन-प्राण उन्मुख होते हैं निकट पाने को, पुनः पाने को अपने खोये हुए, भूले हुए परम प्रियतम को!

एक टुकड़ा मरूद्यान स्निग्ध सुशीतल आश्रय का आश्वास लिये हुए प्रतीक्षा कर रहा है, परम आग्रह से। केवल चाहना ही, सटीक ठिकाने पर आगे बढ़ना ही, बाकी है! किन्तु चाहना हो नहीं पाता। काम के भीतर मुँह डुबाये रखकर कोल्हू के अंधे बैल की तरह अविराम अविश्रान्त घूमते हुए मरना पड़ता है। नेत्र उठाकर देखने का समय नहीं। नेत्रों पर है माया का आवरण। इसके पीछे है पंच-इन्द्रियों का अंकुश। काम की भीड़ में पथ पर चलते हुए अथवा अवकाश में, अनायास दृष्टिगत हुआ है देवालय का उच्च शिखर, किन्तु समीप जाना संभव नहीं हुआ अब तक।

आज समय हुआ है। स्वाद बदलने को, मन बदलने को, कौतूहल हुआ है। प्रतिदिन की गतानुगतिकता से, विषाद के पिंजड़े से मुक्ति पाने के लिए प्राण चाहते हैं भिन्नतर स्वाद, अन्यतर अभिज्ञता; जो अभिज्ञता उसे पहुँचा देगी अंधकार से आलोक के पथ में अनृत से अमृत लोक में। औद्योगिक नगरी की यंत्र-जटिलता के कोलाहल में एक टुकड़े हरित द्वीप के वक्ष पर शांति की प्रगाढ़ स्तब्धता और निश्चिन्त आश्रय का आश्वासन लेकर प्रतीक्षा कर रहा है बेलुड़-मठ। स्वामीजी (स्वामी विवेकानन्द) की बड़ी साध का, बड़ी आशा का बहुकांक्षित रूप—श्रीरामकृष्ण मठ। श्यामल कोमल घास के गलीचे से आवेष्टित धरती के वक्ष पर प्रशान्त गाम्भीर्य लेकर उन्नत सिर से खड़ा हुआ विशाल स्थापत्य आकर्षित करता है बहुत दूर संकुचित खड़े वेदनाहत मनुष्य को। क्रीड़ा चंचल नटखट बालक खेल भूलकर पुनः पाना चाहता है माँ का स्नेह-अँचल। स्नेहमयी जननी हाथ बढ़ाये हुए ही हैं, अपनी क्रीड़ा-श्रान्त सन्तान को गोद में लेने के लिए।

"उनकी ओर एक पग बढ़ने से, वे दस पग आगे आते हैं।" उनके आगे आने का संकेत मिलता है सिंह द्वार पार करते ही। हठात् शीतल हवा का एक झोंका विषाक्त हृदय में घुसकर उसमें चेतना जागृत कर देता है। हू-हू करके घुमड़ उठते हैं प्राण। मन के भीतर अपने आप एकाएक अनुताप जाग उठता है—आहा! इतने दिन क्यों इस अमृत- कुण्ड का सन्धान नहीं पाया! शांति के स्निग्ध प्रलेप से धुल उठता है पीछे छोड़कर आया हुआ यंत्रणादायक अतीत—अन्ततः कुछ क्षणों के लिए ही। मन के भीतर विक्रिया शुरू कर देता है, परिवेश का अपूर्व रसायन। अव्यक्त आनन्दमय बोध की प्रगाढ़ता में चेतना है आच्छन्न। भीतर बाहर सर्वत्र है दिव्य अस्तित्व का अनास्वादित अनुभव। पैरों से थोड़ा आगे बढ़ते ही है आकाश की विशाल व्याप्ति। उसी सीमाहीन विस्तार की पृष्ठभूमि पर हजार वर्षों की आध्यात्मिकता का मूर्त रूप है देवालय में। देवता हैं —'भक्त-शरण' श्रीरामकृष्ण! उनके आनन्द विस्फारित मुख मण्डल में, ईषत् स्फुरित अधरों में वह कैसी व्यंजना है? अर्ध निमीलित प्रेम-चक्षु से विगलित उस करुणाधारा में सिंचित होने के लिए ही तो हुआ है दौड़कर आना, जीवन भर के तुच्छ खिड़वाड़ को एक दिन

के लिए भी भुला पाना।

अविश्रान्त जनस्रोत उमड़ा आता है सागर पार करके, पर्वत लांघ करके, सैकड़ों बाधाओं को अतिक्रम करके। आती हैं नारियाँ, आते हैं पुरुष; आते हैं ब्राह्मण; आते हैं चाण्डाल, भंगी, मेहतर, डोम नट, नटी कोई भी तो बाकी नहीं रहा है। यहाँ नहीं है किसी प्रकार का भेदाभेद। 'इस 'बार केन्द्र है भारतवर्ष'—कहा था विवेकानन्द ने। और भारतवर्ष का केन्द्र? महा-भारत का, महाविश्व का महामिलन केन्द्र श्री रामकृष्ण मठ—बेलुड़-मठ। 'यहाँ से जिस महासमन्वय की उदभिन्न छटा विकसित होगी, उसमें जगत प्लावित हो जायगा।' प्लावन ही है। जगत-संसार, उच्च-नीच, धनी-निर्धन, अजात-कुजात सब एकाकार करने वाला महाप्लावन। ढाई हजार वर्ष पूर्व, लगता है, ऐसा ही स्रोत उत्सारित हुआ था तथागत के हृदय से। उस स्रोतधारा में डूब गया था प्राच्य महादेश। और इस शताब्दी के महाप्लावन की तरंग उमड़ पड़ी है छः महादेशों के विस्तीर्ण भूखण्ड में। इस युग में आध्यात्मिकता का महा भोज हो रहा है, केवह पत्तल बिछाकर बैठना ही बाकी है। तृप्त होना है, धन्य होना है, जन्म-जन्मान्तर के मूढ़ता-मोचन के महायज्ञ में युक्त होना है। इस आनन्द-यज्ञ में सबको निमन्त्रण है।

महानगरी के वक्ष को चीर कर सकल कलुष नाशिनी गंगा की शुभ्र धारा बह रही है—उत्तर से दक्षिण की ओर। मृदु मंद स्निग्ध वायु का चमर डुलाकर दक्षिणी पवन नवयुग का संदेश देश से देशान्तर तक वहन कर ले जाता है। मठ-भूमि की विशाल वनस्पति के पत्र-पल्लव सिहरित होते हैं अस्फुट मृदु गुंजन में। उनके सघन निःश्वास में, निःशब्द उच्चारित होती है कोई महामंत्र-ध्वनि। उसी सुर में सुर मिलाकर मन को बांध लेना है शुद्ध राग में आलाप करने के लिए। उस दिव्य-संगीत की सुर-मूर्च्छना में जीवन-वीणा की सूक्ष्म तंत्रियाँ बज उठती हैं नवीन स्वर में, नवीन छन्द में जग उठते हैं प्राण, इस निष्प्राण हृदय से। श्रीरामकृष्ण के चरण कमल में निवेदित होकर ही नव उत्साह, नव प्रेरणा में संजीवित होते हैं तन-मन प्राण। नीरव, निभृत में गहन अन्तर में प्रार्थना ध्वन्ति होती है—'यह जीवन धन्य करो, यह जीवन धन्य करो .....

देश-भक्ति के आँसू

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
बेलुड़ मठ

मध्य रात्रि का समय। चारों ओर नीरव स्तब्ध वातावरण। बेलुड़ मठ के पुराने भवन के दुमंजिले पर स्थित अपने छोटे कमरे में निद्रित हैं स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज। अचानक उनकी निद्रा टूट गयी। नीरव शान्ति को चीरती हुई सिसकने की आवाज कहाँ से आ रही है, यह देखने के लिए चौंककर वे उठ खड़े हुए। धीरे-धीरे आवाज की दिशा में अग्रसर हुए। पास ही है स्वामी विवेकानन्दजी का कमरा। लगा, आवाज वहीं से आ रही है। दरवाजे को धक्का दिया तो खुल गया। कमरे का दृश्य देखकर वे स्तम्भित रह गये। देखा तो स्वामीजी अपने बिछौने पर नहीं हैं, फर्श पर

लोट रहे हैं तथा सिसक-सिसक कर रो रहे हैं। फर्श तथा कपड़े सभी आँसुओं से भींगे हुए हैं। उनके प्रवेश करते ही स्वामीजी ने चौंककर पूछा-"कौन"? स्वामी विज्ञानानन्दजी ने उत्तर दिया-"स्वामीजी, मैं हूँ पेसन।"+ स्वामीजी ने पूछा-"इतनी रात में यहाँ क्यों आये हो?" स्वामी विज्ञानानन्दजी ने उत्तर दिया —"स्वामीजी, मैं सोया हुआ था, अचानक रोने की आवाज सुनकर आया। स्वामीजी आप रो क्यों रहें हैं?" स्वामीजी ने कहा "देखो पेसन, देश की दुर्दशा, गरीबी तथा पीड़ा की बात सोचकर मैं सो नहीं पा रहा हूँ, वेदना से मन छटपट कर रहा है। इसीलिए ठाकुर (श्री रामकृष्णदेव) से रो रोकर प्रार्थना कर रहा हूँ – लोगों का दुःख दूर करने के लिए, देश की अवस्था को सुधारने के लिए, किन्तु क्या करूँ, वे मेरी प्रार्थना सुन नहीं रहे हैं। स्वामी विज्ञानानन्दजी ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा-"वे आपकी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। वे आपको कितना चाहते थे! क्या कभी भी उन्होंने आपकी इच्छा को ठुकराया है? चलिए, स्वामीजी अब सो जाइए रात अधिक हो चुकी है।" "नहीं, पेसन नहीं, तुम नहीं जानते कितने दिनों से मैं उनको पुकार रहा हूँ, कितनी रातें रो-रोकर बितायी हैं, किन्तु फिर भी वे नहीं सुन रहे हैं। देश की अवस्था बिगड़ती जा रही है। आह, उनका हृदय पाषाण का हो गया है।" यह कहते हुए स्वामीजी फिर से फूट-फूट कर रोने लगे।

वास्तव में कितनी रातें स्वामीजी ने इस प्रकार मातृभूमि के लिए रो-रोकर बितायी थीं' कितने अश्रु देश वासियों के लिए बहाये थे, कौन जानता है? उस रात की बात भर हम जानते हैं, जिस रात को स्वामीजी अमेरिका की शिकागो धर्म-महासभा में भाषण देकर सारे संसार में प्रसिद्धि पाने के बाद, एक धनी परिवार के भवन में मुलायम गद्दी वाले पलंग पर सोने के बदले फर्श पर लोटते हुए रो-रोकर प्रार्थना कर रहे थे — "माँ, यहाँ ये लोग इतने ऐशो-आराम में जी रहे हैं और मेरे देशवासियों को दो जून खाना भी नहीं जुट रहा है, मेरे देशवासियों की अवस्था कब सुधरेगी माँ?"

मातृभूमि के प्रति इसी आवेगमें उन्होंने कहा था—"जब तक मेरे देश में एक कुत्ता भी भूखा है, तब तक मेरा सारा धर्म उसका पेट भरने में निहित है।" इसी आवेग में अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने गुरु-भाइयों से उन्होंने कहा था—'मेरे देशवासी भाइयों को, जो अभी तमोगण में डूबे हुए हैं, आत्मनिर्भरशील बनाने तथा उन्हें कर्मयोग के आदर्श पर परिचालित कर ऊपर उठाने के लिए मैं सहस्र नरकों में जाने के लिए तैयार हूँ।" आबू रोड स्टेशन पर अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्दजी से मुलाकात होने पर उन्हें कहा था—"हरि भाई, मैं तुम्हारा धर्म आदि तनिक भी नहीं समझ सका। अवश्य मेरा हृदय अब विशाल हो गया है। मैं अब लोगों का दुःख दर्द हृदय से अनुभव करने लगा हूँ। विश्वास करो, मैं सचमुच अत्यन्त व्यथा का अनुभव कर रहा हूँ।" इसके बाद के शब्द उनके अवरुद्ध कण्ठ से निकल नहीं पाये। नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी।

परिव्राजक के रूप में भ्रमण करते समय स्वामीजी ने देशवासियों की गरीबी को स्वयं अपनी आँखों से देखा था, हृदय से अनुभव किया था और इसी के उद्वेग में उन्होंने अमेरिका से पत्र में लिखा था "मैं दार्शनिक नहीं हूँ, मैं तत्त्वज्ञानी नहीं हूँ, मैं सन्त भी नहीं हूँ, मैं गरीब हूँ, गरीबों से प्रेम करता हूँ।"

अपनी बहन की आत्महत्या का समाचार सुनकर स्वामीजी ने भारतीय नारियों की दुर्दशा

+स्वामी विज्ञानानन्दजी के पूर्वाश्रम का नाम: हरि प्रसन्न का संक्षिप्त रूप।

तथा सामाजिक समस्याओं को सोचते-सोचते आँसू बहाये थे। इसी आवेग में उन्होंने घोषणा की थी—"जबतक देश में नारियों की स्थिति नहीं सुधरती, तब तक देश की उन्नति असम्भव है।' अपनी गर्भधारिणी माँ के समान हजारों विधवा नारियों की असहाय अवस्था का चिन्तन करते हुए उन्होंने भावावेश में कहा था—"उस धर्म में मैं विश्वास नहीं करता जो भूखे को दो मुट्ठी अन्न न दे सके या विधवा के आँसू न पोंछ सके।'

एक दिन महाकवि गिरीशचन्द्र घोष जब वार्तालाप के प्रसंग में देश की दुर्दशा, भुखमरी, समाज की हीन अवस्था आदि का सजीव चित्रण कर रहे थे तब स्वामीजी दुःख से इतने कातर हो गये कि अपने आँसुओं को छिपाने के लिए वहाँ से उठकर चले गये। कुछ देर बाद लौट कर उन्होंने स्वामी सदानन्दजी को राहत कार्य आरंभ करने का आदेश दिया और श्री गिरीशचन्द्र घोष से कहा—"देखो, जी० सी०, मुझे लगता है कि लोगों का दुःख दूर करने के लिए मुझे हजारों जन्म लेने पड़ें तो उसके लिए भी मैं तैयार हूँ। यदि इससे किसी एक व्यक्ति का तनिक भी दुःख दूर हो सके तो भी मैं यह अवश्य करूँगा।"

सन् १८९८ ई० में जब कलकत्ते में प्लेग ने महामारी का रूप धारण कर लिया तब स्वामीजी देशवासियों के दुःख से इतने अभिभूत हो गये कि राहत कार्य के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध न होने पर वे बेलुड़ मठ की उस जमीन तक को बेचने के लिए उतारू हो गये जिसको प्राप्त करने के लिए उन्होंने जीवन भर परिश्रम किया था। बाद में अवश्य श्री माँ सारदा देवी के आदेश पर वे इस कार्य से विरत हुए थे, और कुछ धन भी राहत कार्य के लिए एकत्र हो गया था।

अमेरिका से प्रत्यावर्तन के बाद स्वामीजी जब कलकत्ते में 'बलराम भवन' में निवास कर रहे थे तब की एक घटना का वर्णन करते हुए स्वामी तुरीयानन्दजी ने कहा था..."स्वामीजी से भेंट करने के लिए मैं उस दिन 'बलराम भवन' गया था। जाकर देखा, स्वामीजी इतनी गंभीर चिन्ता में मग्न होकर टहल रहे हैं कि मेरे आगमन की बात जान नहीं पाये। कुछ देर बाद वे मीराबाई का एक प्रसिद्ध भजन गुनगुनाने लगे तथा उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। दोनों हाथों से अचानक अपना चेहरा ढककर रेलिंग पर टेककर वेदनापूर्ण स्वर में गाने लगे—"दरद न जाने कोई।" उनका दर्द भरा सुर और नैराश्य का भाव मानो चारों ओर फैल रहा था और सब कुछ विषाद से परिपूर्ण हो गया था। "घायल की गति घायल जाने और न जाने कोई"—इस दर्द भरे गीत से मानो भूमण्डल स्पन्दित हो रहा था। उनका स्वर मेरे हृदय में तीर के समान चुभ रहा था और मेरे भी नयन अश्रुपूर्ण हो गये थे। स्वामीजी के दुःख का कारण न जानने से मैं बेचैनी महसूस कर रहा था। कुछ देर बाद मेरी समझ में आया—लोगों के प्रति सहानुभूति ही उनकी इस व्यथा का कारण थी। इस घटना को सुनकर स्वामी तुरीयानन्दजी ने कहा था—"क्या तुम सोचते हो, स्वामीजी के अश्रु व्यर्थ जायेंगे, उनका प्रत्येक अश्रु रक्त की बूँद बनेगा जिससे हजारों व्यक्ति जन्म लेंगे जो देश के लिए अपना बलिदान दे देंगे।" वास्तव में कई युवक युवतियों ने देश की आजादी के लिए स्वामीजी से प्रेरणा पाकर अपनी जान की बाजी लगा दी। राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के चालीस वर्ष बाद भी हमारा देश आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है, राष्ट्रीय एकता के अभाव में टुकड़ों में विभक्त होता जा रहा है, संकट के घने बादल अब भी देश पर मंडरा रहे हैं। मातृभूमि की इस दयनीय अवस्था को देखकर स्वामीजी की आत्मा आज भी अवश्य अश्रुपात कर रही है।

आज भी स्वामीजी के ये आँसू युवक-युवतियों को मातृभूमि के लिए बलिदान देने का आह्वान कर रहे हैं।●

फणीश्वरनाथ रेणु के जीवन और साहित्य में श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द

लेखक अध्यापक श्री शंकरी प्रसाद बसु
अनुवादिका – डा० नन्दिता भार्गव

[डॉ० शंकरी प्रसाद बसु कलकत्ता विश्वविद्यालय के बंगला विभाग के विश्वविद्यालय आचार्य एवं अध्यक्ष तथा बंगला के प्रख्यात लेखक एवं समीक्षक हैं। वे विवेकानन्द के जीवन एवं साहित्य के भी मर्मज्ञ हैं। उनके द्वारा सात खंडों में प्रणीत "विवेकानन्द ओ समकालीन भारत" पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है। शंकरी बाबू का हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार फणीश्वर नाथ रेणु पर बंगला मासिक 'उद्बोधन' के गत अग्रहायण अंक में प्रकाशित लेख का विवेक शिखा के लिए हिन्दी में अनुवाद किया है गवर्नमेन्ट कॉलेज, अजमेर के इतिहास विभाग की प्राध्यापिका डॉ० (श्रीमती) नन्दिता भार्गव ने।—सं०]

श्री रामकृष्ण ने प्रत्यक्ष स्पर्श के द्वारा गिरीश चन्द्र घोष जैसे अधम व्यक्ति का रूपान्तर कर उसे सन्त शिरोमणि बना दिया था। स्पर्श कथा यहीं समाप्त नहीं हुई। उनके अप्रत्यक्ष स्पर्श से कितने ही लोगों का जो आश्चर्यजनक रूपान्तर हुआ, उन सबका विवरण हम लोगों को विदित भी नहीं हो पाता है। सब कुछ जान पाना सम्भव भी नहीं है, परन्तु इस प्रकार का एक वृतान्त मिला है। लौकिक और अलौकिक की सीमा से परे वह वृतान्त है आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक विशिष्ट लेखक के सम्बन्ध में, जिनका नाम है—फणीश्वर नाथ रेणु।

फणीश्वर का जन्म १९२१ ई० में एक पूर्णिमा के दिन बिहार के औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ था। आजादी से पूर्व और उत्तरकाल में भी वह राजनीति से विशेष संलग्न रहे। वह समाजवादी विचारधारा के थे तथा जयप्रकाश नारायण और राम मनोहर लोहिया के घनिष्ठ साथी थे। बचपन में ही १९३० ई० के आन्दोलन में भाग लेकर एक वर्ष तक कारावास में रहे। आजादी के बाद १९४९ ई० में नेपाल के मजदूर आन्दोलन में योगदान देने के कारण फिर कारावास में रहे। तत्पश्चात् जयप्रकाश के जन-संघर्ष आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें पुनः कारावास मिला। फणीश्वर नाथ रेणु को भारत सरकार से पद्मश्री और राज्य सरकार से भत्ता प्राप्त हुआ था, परन्तु देश में फैली क्रमवर्धमान दुर्नीति ने उन्हें उद्वेलित कर दिया था। वह कहते थे—"बार-बार एहसास होता है कि दम घुट जायेगा, अपने अस्थि पिंजर के अन्दर ही छटपटाता रहता हूँ, चारों ओर क्या ही भयंकर दशा है—क्या इसी भारतवर्ष की हम लोगों को चाह थी?" उन्होंने राष्ट्रपति को पद्मश्री लौटा दी और राज्यपाल को भत्ता!

समाज चेतना और राजनीति जिनकी धमनियों में प्रवाहित हैं, उनके साहित्य-सृजन में उन सब भावों का प्राधान्य तो रहेगा ही। आधुनिक हिन्दी साहित्य में लोकचेतना प्रकाशित करने के क्षेत्र में फणीश्वर नाथ की भूमिका उल्लेखनीय रही है। १९५२-५३ ई० में वह दीर्घकाल तक रोग शैय्या पर

पड़े रहे। रोग से मुक्त होने पर साहित्य के प्रति उनकी रुचि बढ़ी। १९५४ ई० में उनका प्रथम उपन्यास प्रकाशित हुआ, "मैला आंचल" और तब उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। **मैला आंचल, परती परिकथा** आदि कुछ एक ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुए। अनुभव के धनी इन लेखक को, उनके पटना के डाक बंगला रोड स्थित निवास स्थान में किसी भी संध्या को देखा जा सकता था—कवि, साहित्यकार, संवाददाता, शिल्पकार और राजनीतिज्ञों के साथ। वह थे चपल प्रकृति के। प्रचलित नैतिकता की परवाह नहीं करते थे। हर किस्म के आत्मविनाशकारी व्यसन में आसक्त थे।

जब फणीश्वर नाथ तीस वर्ष की उम्र पार कर चुके तब उनके जीवन में एक अलौकिक रीति से श्रीरामकृष्ण का प्रवेश हुआ। यह बात उन्होंने अथक और मुक्त भाव से कही है। उन्होंने केवल व्यक्तिगत रूप से ही रामकृष्ण विवेकानन्द को अपने आराध्य के रूप में ग्रहण नहीं किया (जो कई अनेक लेखकों ने किया है) अपितु अपने साहित्य को भी रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से सिंचित कर दिया, जो उस प्रकार के अनेक लेखकों ने नहीं किया है। फणीश्वर नाथ रेणु की सहधर्मिणी, श्रीमती लतिका रेणु के साथ १८. ३. ८५. को उनके पटना के निवास स्थान पर साक्षात्कार करने पर, उन्होंने निम्नलिखित वृतान्त हस्ताक्षर सहित लेखक को दिया।

"हमारा विवाह १९५२ के फरवरी माह में हुआ था। उन दिनों फणीश्वर नाथ देवी-देवता में विश्वास नहीं करते थे। वे समाजवाद पार्टी में थे—जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, राम मनोहर लोहिया आदि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। मैं हिन्दू घरों के रीति-अनुसार पूजा-अर्चना किया करती थी। उसे देख वह कहते थे—यह सब तस्वीर आदि की नुमाईश क्या है? आखिर कांच और लकड़ी में है क्या! उनके घरवाले भी कहते थे कि वह देवी-देवता नहीं मानते हैं। बहुत समय से उनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था। १९४२ के आन्दोलन में भाग लेने पर जेल गये। भागलपुर की जेल में उन्हें "प्लुरसी" हो गयी थी। तत्पश्चात् १९५१ में वह सख्त बीमार हुए। प्रचुर मात्रा में खून की उल्टी होती थी। जीने की सम्भावना भी नहीं रही। बनर्जी साहब, जो चिकित्सा कर रहे थे, उन्हें बचाने का भरसक प्रयास कर रहे थे। उन दिनों ही उन्हें ठाकुर श्रीरामकृष्ण के दिव्य दर्शन हुए। इसके बारे में वह मुझे स्वयं बार-बार बताया करते थे। (यह रामकृष्ण दर्शन फणीश्वर की ही अपनी वाणी में आगे उद्धृत किया जायेगा) पटना रामकृष्ण आश्रम में आना जाना १९६० के बाद से ही—उस अलौकिक घटना के पश्चात्—आरंभ हुआ। १९६४ में 'विद्यार्थी निवास' में उन्होंने बहन के पुत्र निर्मल बोस को रखने की व्यवस्था की। निर्मल से मिलने नियमित रूप से वे वहां जाते थे। स्वामी वीतशोकानन्द और सुनील महाराज के साथ उनकी विशेष सहृदयता रही।

"१९६४ में उन्होंने स्वामी माधवानन्दजी से दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा के पश्चात् सुबह और संध्या को नियमित जप किया करते थे। गुरु महाराज की तस्वीर रखते थे। दुर्गा और काली पूजा के समय वह नियमित आश्रम जाते थे। अन्य कहीं नहीं। यदि मैं कहती कि अन्य स्थानों में क्या पूजा नहीं होती है, वहाँ क्यों नहीं जाते हो—तो वह कहते—ऐसी बातें मुझ से मत कहो, मैं केवल आश्रम ही जाऊंगा। काली पूजा के समय सारी रात आश्रम में ही रहते। गाने के समय तबला बजाते थे। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में बंगला और हिन्दी में खरीदते और पढ़ते थे। जिस समय श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की पुस्तकें

पढ़ते तो किसी को पास आने नहीं देते थे। कोई यदि आवाज भी देता तो विक्षुब्ध हो जाते थे।"

फणीश्वर नाथ के साथ परिचय और बातचीत की एक सुन्दर स्मृति कथा रामकृष्ण मिशन के एक संन्यासी ने लिख भेजी है --

"१९६५ के अन्तिम दिनों से १९६९ के मार्च तक मैं पटना में था। उन दिनों रेणु जी के साथ प्रायः हो मिलना होता था। बहुधा संन्ध्या समय वह आश्रम में आते थे। घास के ऊपर अकेले ही बैठे रहते थे। कभी-कभी 'विद्यार्थी निवास' के छात्रों का बॉलीबॉल का खेल देखते थे। पुस्तकालय में जाते थे। साधुओं के साथ बात करते समय चुप रहते थे। अधिकतर समय बातों को सुनना ही उन्हें प्रिय था। मन्दिर में ठाकुर को ओर एक टक देखते रहते।

"उन्हीं दिनों उनके साथ मेरा परिचय हुआ था। एक दिन मैंने कहा - आपका एक साक्षात्कार लेना चाहता हूँ "लिट्ल मैगजीन" में छपवाऊंगा। हस कर वे बोले, "तो फिर घर पर आइए।" एक दिन संध्या समय चला गया। बरामदे में कुर्सी पर बैठा और फिर रेणुजी से कहा — 'आप तो हिन्दी के प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में से हैं। आपकी लघु कहानियाँ मुझे बहुत पसन्द हैं।"

रेणुजी—महाराज, यह सब बातें जाने दीजिए। ठाकुर और स्वामीजी की बातें बतलाइए। आज जब मैंने आपको पाया है तो यह सुअवसर मैं छोड़ने वाला नहीं।

मैं—यह क्या ! मैं तो आपका साक्षात्कार लेने आया हूँ। क्या नहीं बतायेंगे आप अपना वक्तव्य, अनुभूति ? आप तो किसी समय ठाकुर, देवताओं पर विश्वास नही रखते थे।

रेणुजी—आज भी क्या ऐसा चाहता हूँ। पर उन्हें अस्वीकार नहीं कर सकता हूँ। प्रेम को क्या अस्वीकार किया जा सकता है ?

मैं—प्रेम ?

रेणुजी—क्या आप रामकृष्ण देव की तस्वीर को नहीं देख रहे हैं ? प्रेम—घनीभूत प्रेम। उन्हें आप लोग अवतार कहिए, महापुरुष कहिए, जो जी चाहे कहिए—मेरे लिए तो वह प्रेम के सजीव सम्राट हैं। जब-जब इस तस्वीर की ओर देखता हूँ तो लगता है मानो वह मेरे चिरकाल के अपने जन हैं। लगता है मानो वह केवल मुझे ही प्यार करते हैं। (आवेश में आकर कुछ काल तक रेणूजी चुप रहे) सोचता हूँ कि यह सब मन का भ्रम ही है, परन्तु जब भी इस तस्वीर की तरफ देखता हूँ तो ख्याल आता है कि वह कितने अपने हैं। उन आँखों से केवल प्रेम ही झर रहा है।

मैं—आप कला प्रेमी हैं। यह कथन मात्र भावावेश तो नहीं है !

रेणुजी (सहास्य) -- क्या जानूँ। कितने ही दिन उनकी तस्वीर की ओर देखकर मैंने कहा है— ठाकुर, तुम मुझे इतना प्यार क्यों करते हो ? मैं तो मदिरा पीता हूँ, जो जी चाहे करता हूँ। लोग जिसे पाप कहते हैं वह भी किया है। तब क्यों मुझे प्यार करते हो ? वो सिर्फ मंदमंद मुस्काते हैं और कहते हैं—साले जितना पाप करना है कर ले। जितनी शराब पीनी है, पी ले। तो भी मैं तुझे छोड़ूंगा नही। तू मेरा है, आ, मेरी गोद में बैठकर तू पी ले।

मैं—यह सब तो दृष्टिभ्रम हो सकता है।

रेणुजी (उत्तेजित होकर)—दृष्टिभ्रम ! आप कह क्या रहे हैं ? मैंने उन्हें देखा है। आपको जैसे देख रहा हूँ ठीक वैसे ही। (शान्त होकर)

मेरे जीवन में एक समय था जब मैं टी० बी० से पीड़ित था। डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। रिश्तेदार दोस्त कोई पास नहीं आते थे। अस्पताल में एक दिन देखा—एक आदमी, नंगे बदन, कमर में धोती लपेटे, मुख पर दाढ़ी। मेरे पास आकर बोला—'जा साले (ठाकुर बच्चों की भांति इस शब्द का अक्सर प्रयोग करते थे!) इतनी चिन्ता क्यों करता है? तू मरेगा नहीं, जी जायेगा।" मैंने कहा—डाक्टरों ने कहा है कि मैं मर जाऊँगा। तो उस आदमी ने कहा—"साले डाक्टर लोग क्या जानते हैं? मैं कहता हूँ, तू जी जाएगा।" महाराज, मैं सचमुच जी उठा। क्या आप जानते हैं वह आदमी कौन था?—वे थे मेरे रामकृष्ण देव।

मैं - स्वामी जी को आप क्या समझते हैं?

रेणुजी—स्वामीजी? अरे बाबा। वह तो जैसे हिमालय पर्वत के समान हैं। बाघ का बच्चा।

मैं—आप तो गाँधीजी के आन्दोलन से संलग्न थे। बाद में समाजवादी आन्दोलन से भी। इस पृष्ठभूमि में स्वामीजी.....

रेणुजी—Swamiji was far greater than all these leaders. उन्होंने हम लोगों को आत्म-सम्मान का पुनः ज्ञान कराया। पूर्व में जब कहानियाँ लिखता था तो ग्रामीण लोगों के दुःख दर्द की बातें लिखता था। स्वामीजी ने मुझे सिखाया कि वे सब मनुष्य नहीं, देवता हैं। आज मैं साहित्य के माध्यम से देव-पूजा ही तो कर रहा हूँ। और समाजवाद के विषय में क्या कहूँ! Swamiji was the greatest socialist. यदि स्वाधीनता आन्दोलन के समय स्वामीजी के बताये पथ पर चला जाता तो देश की अवस्था कुछ और ही होती।

मैं—माँ (अर्थात माँ सारदा) के सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है?

रेणुजी—(हँसते हुए) वह न बता सकूंगा। माँ, मेरी माँ! "यतने हृदय रेखो आदरिणी श्यामा माँ के, मन, तुई देख आर आमी देखी, आर केऊ ना देखे।"—(यत्न से हृदय में रखो आदरणीया श्यामा माँ को। ऐ मन, उन्हें तू देख और मैं देखूँ—अन्य कोई न देख पाये!)

मैं—आपके साहित्यक जीवन में इनका प्रभाव किस प्रकार रहा?

रेणुजी—एक उपन्यास लिख रहा हूँ जो शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। उसमें बतलाया है कि बापूजी से भी स्वामीजी का आदर्श महान है। मेरे मन में इस सम्बन्ध में जो भी विचार उठ रहे हैं उन सब का समाधान उसी में आप पावेंगे।

मैं—और श्री रामकृष्ण का प्रभाव?

रेणुजी—ठाकुर और स्वामीजी ने मुझे दो बातें सिखलायी हैं। प्रेम और जीवन का पूर्णत्व। पूर्व में मैं मानव से प्रेम करता था। वही प्रेम सुदृढ़ हुआ जब उन लोगों से सीखा कि मनुष्य के अंतः-करण में ही देवता छिपा हुआ है। पहले दुःख और आपदाओं में असहिष्णु हो जाता था। इन लोगों ने मुझे सिखाया कि यह सब जीवन के ही अंग हैं। अब मैं जय-पराजय, सफलता-विफलता सभी मिलाकर ही देखता हूँ और जीवन के प्रति सभी दृष्टिकोणों ने मुझे साहित्य के पथ पर अग्रसर किया। सत्य को और भी निकट से देखना सीख गया हूँ। स्वामीजी की Kali The Mother, "काली माँ", कविता ही जीवन का असली रूप है। यद्यपि सातू महाराज (स्वामी वीतशोकानन्द) ने मुझे यह समझा दिया है।

मैं—वह कैसे?

रेणुजी—वह बहुत दिन पहले की बात है। उन दिनों में आश्रम में नहीं जाता था। साधुओं

के साथ परिचय नहीं था। एक दिन मद्यपान करने के पश्चात् रात दस बजे करीब आश्रम में जा मन्दिर के बन्द दरवाजे के सामने पड़ा जोर-जोर से रो रहा था। लगभग दस बारह मिनट रोने के पश्चात् एक साधु ने आकर मुझे पकड़ कर उठाया कहा —आप रो क्यों रहे हैं? मैंने स्वामीजी को बताया कि मैं कितना दुःखी था। मेरा हाथ पकड़ कर वह मुझे बरामदे में ले गये और बैठने को कुर्सी देकर बोले—जीवन में तो सुख और दुःख है ही—वह सब लेकर चिन्ता क्यों कर रहे हो?

मैं—यह तत्व-ज्ञान आपको अच्छा लग गया?

रेणुजी—तत्व-ज्ञान नहीं। मैं अवाक् हो गया यह देखकर कि मेरे मुंह से शराब की दुर्गंध पाकर भी उन्होंने मुझसे घृणा नहीं की। उस समय से ही नियमित आश्रम आता हूँ, अन्य महाराज लोगों से भी परिचय हुआ, आश्रम के विद्यार्थी निवास में अपने भांजे को भर्ती करवा दिया। अर्जुन को भी एक दिन ले गया। अर्जुन ईंट के भट्ठे में काम करता था। उसे मजदूर कह सकते हैं। महाराज के पास ले जाकर बोला - "महाराज, इस लड़के ने स्कूल की पढ़ाई पूरी करली है। परन्तु गरीबी के कारण मजदूरी कर रहा है।" सातू महाराज ने फौरन कहा—"इसे विद्यार्थी निवास में भर्ती कर दीजिए, कॉलेज में पढ़ने का प्रबन्ध हो जायेगा।"

फणीश्वर नाथ रेणु के साहित्य में निहित उनका जीवन दर्शन ऊपर लिखित विवरण से ज्ञात हो जाता है। मैं अब फणीश्वर के "श्रुत अश्रुत पूर्व" ग्रंथ के अन्तर्गत "रस के बस में चार रात" नामक उस रचना के कुछ अंश उद्धृत करूंगा, जिनमें उन्होंने रामकृष्ण के दिव्य दर्शन का वर्णन कया है। यह अंश मानो एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक के अन्तर्जीवन में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तन की कथा है।

"अस्पताल के उन महत्वपूर्ण दिनों की बातें बारम्बार याद आती हैं। वह क्षण जब मैंने भाव विह्वल हो ठीक श्रीरामकृष्ण की भांति ही एक मूर्ति को मुझसे बातें करते देखा था। उससे पहले रामकृष्ण की तस्वीर देखकर मेरे मन में भक्ति भावना कभी नहीं आयी थी, वरन् अश्रद्धा के भाव ही आते रहे। मैं उनके विषय में कुछ जानता भी नहीं था। कुछ जानने की इच्छा भी कभी नहीं हुई। विवेकानन्द उनके शिष्य थे, पर उन्होंने क्या कहा और किया, यह सब न जानते हुए भी मेरे मन में एक वैर की भावना थी। कारण मार्क्सवादी सदा ही धार्मिक लोगों को अफीम खाने वाले ही समझते हैं।

"बाल्टी भर-भर खून की उल्टियां करते हुए उस समय मैं निस्तेज सा हो गया था। उस दिन हमारे वार्ड में आधे दर्जन से अधिक लोगों की मृत्यु हो गयी थी। पंखा बन्द और नल में पानी नहीं था। मेरी जिह्वा में थूंक आटे की भांति चिपक गया था—मानो सांस बन्द हो रही थी। मैं फेफड़े का मरीज जो ठहरा-- अन्त समय तक होश में था। वार्ड में पानी न होने के कारण हाहाकार मचा था। मुझे रह-रह कर नींद आ रही थी। बदबू से वह स्थान मानो नरक समान हो गया था। अचानक आँखें खोलते ही देखता हूँ कि मेरे ऊपर एक छाया झुकी हुई है जो उसी क्षण पीछे हट गई। शायद मुझे 'असहाय मृत्यु पथगामी रोगी' समझ कर एक डोम चक्कर काट रहा है। मरते ही लाश पर कब्जा पर लेगा। वह देख रहा था कि मैं सांस ले रहा हूँ या नहीं। मुझे जीवित देखकर वह दूर जा खड़ा हुआ। तकिये के नीचे रखी हुई घड़ी और कलम को मैंने टटोल लिया। शायद हाथ तकिये के नीचे ही रह गया। मुझे नींद

आने लगी। परन्तु जागते रहने की कोशिश करने लगा।

इतने में ही एक दाढ़ी वाला पागल या नशाखोर धुंआ उड़ाता हुआ मेरे निकट आया। मेरी ओर धुंआ उड़ाता हुआ वह हँसने लगा। तत्पश्चात् उसने मुझ से पूछा कि मैं क्यों रो रहा हूँ। पुनः हँसते हुए वह बंगला भाषा में कहने लगा—अरे साले रो क्यों रहा है? मैंने कहा—मुझे बहुत काम करना था, परन्तु कर नहीं पाया। मैं लेटे रहना नहीं चाहता हूँ। दाढ़ीवाले ने, उपहास करते हुए, परन्तु गम्भीर स्वर से कहा—देश का उद्धार तो कर ही दिया, अब चाहते क्या हो? साले देश सेवक के मारे लोग.....तेरे पास तो सोने की कलम है! 'हाँ है, पार्कर फिफ्टी वन'— मैंने शर्माते हुए जवाब दिया था। यह सुन दाढ़ीवाला बोला, "इस सोने की कलम से क्या लिखता रहता है,कभी मेरा नाम लिखा भी है तूने? जा साले, कुछ नहीं जानता है—हा—हा—हा—जा साले तुझे कोई बीमारी नहीं है, तू अब ठीक है, तू मरीज नहीं है—तू स्वस्थ है—उठ खड़ा हो जा।

"आँखे खोल कर देखता हूँ कि वार्ड तथा बरामदे में सूर्य की रोशनी बिखर रही है। मन में एहसास हुआ कि मैं स्वस्थ हो गया हूँ। डेढ साल से जो बुखार चल रहा था वह आज पहली बार डेढ डिग्री कम हो गया। डॉक्टर हर्ड साहब आये— संकट की रात टल गयी।

"अस्पताल से छुट्टी मिलते ही दूसरे दिन मैं एक किताब की दुकान में गया। बंगला पुस्तकों में एक पुस्तक ने मुझे आकर्षित किया—"परम पुरुष श्री श्रीरामकृष्ण", इसके लेखक थे अचिन्त्य कुमार सेन गुप्त। सत्यजित राय ने शीर्षक पट की रचना की थी। पुस्तक के अन्दर के चित्रों को देखकर मैं उत्तेजित हो गया। यह तो—तो—तो तो—उस दिन छः सात महीने पूर्व अस्पताल के उस महत्वपूर्ण दिवस को—उस रात को देखी हुई—वही मूर्ति।

'बस मैंने रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य पढ़ना आरम्भ कर दिया। मानो बहुत दिन से भूखे व्यक्ति को आहार मिल गया। बार-बार पढ़कर भी प्यास मिट नहीं रही थी।

"रामकृष्ण की तस्वीर के सामने बैठकर मैंने अपना प्रथम उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। पाण्डुलिपि पर सर्व प्रथम ॐ नमो भगवते श्रीरामकृष्णाय नमः लिखना चाह रहा था कि सहसा ठाकुर बोल उठे "अरे यह क्या? सोने की कलम से किताब लिखेगा तू? और मेरा नाम लिखेगा? अरे ओ बेबकूफ प्रारम्भ में गणेश का नाम लिखना चाहिए। मेरे क्या सूंड है जो मैं गणेश बनूंगा? जा साले, तू जो चाहता है वही लिख ले।" तब मैंने श्रीगणेश नहीं लिखकर सिर्फ गणेश लिखा और तत्पश्चात् उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया।"

'श्रीरामकृष्ण ने कहा था—माँ मुझे नीरस संन्यासी नहीं बनाना। मुझे भावपूर्ण रखना। यदि रामकृष्ण मधुर मनोहर भाव में न रहते, यदि वह नीरस संन्यासी हो जाते तो मैं सोचता हूँ कि आज कितने ही व्यक्ति गाना नहीं गा सकते, नाटक नहीं कर सकते, चित्र नहीं बना सकते, ना ही उनके जीवन में आनन्द होता।

फणीश्वर नाथ रेणु के इस अलौकिक श्रीरामकृष्ण-दर्शन का एक आध्यात्मिक पक्ष है। यह घटना इतिहास के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इस दर्शन के कारण एक प्रभावशाली लेखक के अन्तःकरण में गहरा प्रभाव पड़ा जिसकी स्पष्ट झलक उनके साहित्य में दिखलाई पड़ती है।

फणीश्वर के संस्मरणों से ज्ञात होता है कि

पटना रामकृष्ण मिशन के विद्यार्थी निवास के कार्यक्रम से वह बहुत अधिक आकर्षित हुए थे। "कितने चौराहे" नामक उपन्यास में उन्होंने विद्यार्थी निवास सम्बन्धी प्रसंगों को विशेष रूप से लिखा है। इस पुस्तक में स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास भी है जो उस काल में देशवासियों में प्राण तरंग प्रवाहित कर रहा था। उस तरंग की अंतर्धारा के रूप में, उन्होंने दिखाया, विवेकानन्द की सेवा और सर्वस्य त्याग के आदर्श को। इस उपन्यास में सर्वत्र स्वामीजी का भाव और चिन्तन बिखरा हुआ है। विवेकानन्द के जीवन और साहित्य के अनुरागी पाठक चरित्रबल और सेवा के दर्शन द्वारा अवश्य ही प्रभावित होंगे।

फणीश्वर ने अपने कई उपन्यासों में रामकृष्ण-विवेकानन्द की चर्चा की है, जैसे—"पल्टू बाबू रोड" तथा 'ऋण जल धन जल"। "ऋण जल धन जल" तो रामकृष्ण-विवेकानन्द के प्रसंग से ओत-प्रोत है। यह उपन्यास बिहार के १९६६ के सूखे और १९७५ के जलप्लावन की पृष्ठ भूमि में लिखा गया था। सूखे के सूत्र के रूप में स्मरण किया गया—तीर्थ यात्रा के रास्ते में पीड़ित लोगों में श्रीरामकृष्ण का अवस्थान—उनके सत्याग्रह की कथा—'पहले इन्हें भरपेट भोजन कराओ। अपनी काशी की गंगा को रहने दो—मैं तीर्थ करने नहीं जाऊँगा। इन्हें भरपेट भोजन कराओ, यही तो शिव हैं, यही नारायण हैं।"

आतंक में भी निर्भय होकर डटे रहने का साहस रेणुजी में था, इस कारण नीडर होकर जन विप्लव के अह्वान को उन्होंने स्वीकार किया। जय प्रकाश नारायण के आन्दोलन में योगदान करने के पश्चात् "जन जागरण में साहित्यकार की भूमिका" नामक निबन्ध में उन्होंने लिखा—"जो लोग यह कहते हैं कि इस आन्दोलन के पीछे जनसंघ या राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोग हैं, वह यह सुन लें कि उनके अलावा भी फणीश्वर नाथ रेणु नामक रामकृष्ण भक्त इस आन्दोलन में है। वह विश्वास करता है कि इस देश में गांधी से भी पहले रामकृष्ण और विवेकानन्द हुए और उन दोनों से बढ़कर कोई दूसरा क्रान्तिकारी नहीं हुआ है। जो दरिद्र-नारायण की सेवा को ही सत्य की पूजा मानते हैं, उन्हें कौन प्रतिक्रियावादी कहेगा? मैं जानता हूँ कि रामकृष्ण परमहंस ने मार्क्स से भिन्न कुछ नहीं कहा, वरन् इससे भी काफी कुछ अधिक कहा है जो अब समय के अन्तराल में सत्य प्रमाणित हो रहा है।"

परम सत्य पर अडिग रहने की शक्ति रेणुजी ने श्रीरामकृष्ण से ही प्राप्त की थी। 'ऋण जल धन जल" उपन्यास में इसकी स्वीकृति मिलती है—जीवन में सिर्फ मृत्यु और संघर्ष ही नहीं हैं—सृजन भी है। समाज के लिए, सूखी धरती को शष्य-श्यामला बनाने के लिए वह रचना भी करता है। समाज को मानवोचित और मनुष्य को सामाजिक कर पाना ही उस मुक्ति का एक मात्र रास्ता है। आज मनुष्य सिर्फ यंत्र ही चला रहा है। इस टैकनॉलाजी के युग में हम लोगों ने जीवन को उपभोग करने की टैकनॉलॉजी को ही खो दिया है।

विश्वास-अविश्वास, आशा-निराशा, सफलता-विफलता की अगनित तरंगों में उठते गिरते फणीश्वर के अन्तःकरण का चीत्कार जब खून की उल्टियां करते-करते स्तब्ध होने चला था, उसी क्षण उन्होंने पाया था श्रीरामकृष्ण को- जिन्होंने उन्हें जीवन रूपी टेढ़ी मेढ़ी नदी के सम्पूर्ण मानचित्र का अवलोकन करा दिया था। उस शाश्वत नाव खेवइया की ओर ध्यान रखकर ही फणीश्वर अंतिम क्षण तक अपने पतवार को खींचते चले गये। श्रीमती लतिका रेणु की संस्मृति से उनके जीवन के अन्तिम क्षणों का जो विवरण प्राप्त हुआ है वह इस प्रकार है—

"शरीर के प्रति वह बहुत उदासीन थे। "ड्रिंक" करने की आदत थी। अविराम सिगरेट पीते थे। परन्तु अन्तिम दिनों में उन्होंने सिगरेट पीना छोड़ सा दिया था। पेट में बहुत दर्द होता रहता था। १९७६ के अक्टूबर माह में वह बोले—"शायद मुझे कैन्सर हो गया है।" मैंने कहा - 'ओ, तुम बड़े आदमी हो, बड़ी-बड़ी बीमारियों के अलावा और कुछ सोच ही नहीं सकते हो, इसी कारण कैन्सर की बात कह रहे हो।" उन्होंने कहा, "नहीं—यह बात नहीं, ठाकुर को कैन्सर हो गया था. मुझे भी होगा।"

'चिकित्सकगण समझ नहीं पाये कि उन्हें कैंसर हुआ है। उन लोगों ने तो पेप्टिक अल्सर ही बताया था और ऑपरेशन के लिए कह रहे थे। मैंने भी कहा, "यातना सह रहे हो, ऑपरेशन करवा ही लो, कष्ट दूर हो जायेगा।" वे ऑपरेशन के लिए सहमत नहीं थे। कहते थे कि ऑपरेशन होने पर वह चले जायेंगे, समाधि हो जायेगी।

"चिकित्सकों ने पेट चीरते ही देखा—कैंसर, जल्दी से पेट सी दिया। कैंसर बहुत फैल चुका था। कौन जाने किस प्रकार उन्होंने तीन साल से भी अधिक समय तक उस पीड़ा को सहन किया था। उनमें आत्म संयम बहुत था। ऑपरेशन के बाद होश में नहीं आये। उन्नीस दिन बाद शरीर नहीं रहा।"

रेणुजी के साथ रवीन्द्र भारती का परिचय उनके अन्तिम दिनों में हुआ था। उन्होंने १९७८ ई. की "कृत्तिवास" पत्रिका में रेणुजी के ऑपरेशन के लिए प्रस्थान के प्रसंग में लिखा है—

२४ ता० की सुबह आठ बजे जाकर देखा कि ऑपरेशन की तैयारी हो रही थी। रेणुजी ने अपने सिरहाने से रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की तस्वीर लेकर मस्तक पर स्पर्श कर वक्ष से लगायी। स्ट्रेचर आने पर वह उस पर लेट गये। हाथ जोड़ कर बोले—"अब मैं जा रहा हूँ।"

ऑपरेशन के बाद उन्नीस दिन तक बेहोश रहने के पश्चात् रेणुजी की मृत्यु हो गयी। आभ्यन्तर चेतना के समय श्रीरामकृष्ण के साथ क्या उनकी कुछ वार्तालाप हुई थी? जाग्रत चेतना के समय श्रीरामकृष्ण के साथ वार्तालाप के अनेकानेक संवाद रेणुजी लिख गये हैं, किन्तु इस अर्द्धचेतनावस्था के वार्तालाप के बारे में कोई भी संदेशा नहीं दिया—कुछ जान पाना सम्भव नहीं। उस समय तो वाणी के उस पार का संलाप हो रहा होगा।

कोई भी कर्तव्य तुच्छ नहीं हैं। क्या करता है इससे नहीं बल्कि किस भाव से करता है, इससे आदमी की पहचान होनी चाहिए। एक मोची जो सुन्दर मजबूत जूते स्वल्पकाल में तैयार कर सकता है, वह अच्छा है बनिस्वत एक प्राध्यापक के जो दिन भर फजूल बकता रहता है। सब कर्तव्य पवित्र हैं और कर्तव्यनिष्ठा प्रभु-पूजन का एक उत्तम प्रकार है।

—स्वामी विवेकानन्द

कविता

आँसुओं के लोक में

— सुरेश कुमार मिश्र

रात्रि के अंतिम प्रहर में आज लगा
तुम मेरे हृदय में सो रहे हो,
तुम्हारे निःश्वासों की तीक्ष्णता से मेरे तमाम संकल्प कट रहे,
मोह-शिला चूर हो रही,
दर्प वाष्प-सा उड़ रहा और काँप उठा मेरा मौन,
सारे प्रश्न झड़ गये.....
हे निष्ठुर ! आज तुम कितने प्रिय लगे .....।

\+ + +

मैं प्रतीक्षा में हूँ, जब तुम जगोगे
मैं तुम्हें बुद्धि के राजमार्ग से प्रेम की पगडंडी पर ले चलूँगा,
मेरे पश्चाताप की अश्रु-बूँदें,
दबाएँगी तुम्हारे थके सुकोमल चरण
और मैं कहूँगा—ओ निर्मम !!
निर्मम संसार के निर्मम खेल अब न दिखा,
अन्यथा—
मैं अविरल आँसुओं की ऊष्मा से
तुम्हारी सम्पूर्ण निष्ठुरता को चुनौती दूँगा
और प्रिय !!!
तुम पराजित हो अपने विराट संस्पर्श से
मुझे दुलारोगे।
काल की विनाश-लीला इस कौतुक से भय खाएगी।
हे निष्ठुर !
मैं तुम्हारे साथ
आंसुओं के लोक में बसने लगूँगा।

हिन्दी विभाग
लोक महाविद्यालय, बनियापुर
सारण बिहार)

साधना के अन्तराय (3)

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

आध्यात्मिक जीवन एक "बाधा दौड़" (Hurdle's Race) के समान है, विशेषकर उनके लिए जो आगे बढ़ना चाहते हैं। एक बाधा को जीतने पर दूसरी सूक्ष्मतर बाधा उपस्थित होती है और यह क्रम चलता ही रहता है। कभी-कभी एक बाधा दूसरे को जन्म देती है और तब एक दुर्वृत्त सा बन जाता है। व्याधि सत्यानादि योग के प्रमुख विक्षेपों का वर्णन करने के बाद पतंजलि उनके सहायक तथा परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई कुछ उपबाधाओं का वर्णन करते हैं। ये विक्षेपों के शारीरिक एवं मानसिक लक्षण भी हैं।

दुःख-दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व—श्वास प्रश्वासाः—विक्षेप सहभुवः १-३१

(१) **दुःख**—शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा सदा ही अस्वस्थता का लक्षण होती है तथा वह इस बात का संकेत है कि देह-मन में कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ी है। शारीरिक दुःख तो रोग का लक्षण है ही, मानसिक पीड़ा भी इस बात का प्रमाण है कि मन अस्वस्थ, असन्तुलित अथवा विभिन्न इच्छाओं एवं परस्पर विरोधी विचारों के तनाव का शिकार बना हुआ है। शारीरिक पीड़ा को दूर करने तो लोग डाक्टर के पास दौड़ जाते हैं लेकिन तीव्र मानसिक वेदना होने पर भी लोग यह नहीं समझते हैं कि वे रोग ग्रस्त हैं तथा किसी मानसिक चिकित्सक की उन्हें आवश्यकता है। सामान्य लोग इस बात पर ध्यान दें या न दें, साधक को इस बारे में सतर्क रहना चाहिए. तथा दुःखरूप लक्षण के दिखाई देते ही उसके कारण, मूल विक्षेप को खोजना चाहिए।

(२) **दौर्मनस्य**—दुःख के साथ जब उसे दूर करने की अपनी असमर्थता का भान हो तब निराशा होती है। साधन पथपर प्रगति में व्यवधान उपस्थित होने पर, शुभेच्छा के अपूर्ण होने पर मन का क्षोभ एवं एक प्रकार के नैराश्य का भाव दौर्मनस्य है। सत्यान, संशय प्रमादादि चित्त के दोष मात्र हैं, लेकिन यह दौर्मनस्य मनोरोग विशेष है. जिसे अंग्रेजी में Depression कहा जाता है तथा जो आजकल अत्यधिक व्यापक हो गया है।

अंगमेजयत्व—अंग समूह का कम्पन। जब मानसिक असन्तुलन एवं नैराश्य अधिक हो जाता है तो वह हाथ पैर के कम्पन, हृदय गति के बढ़ने, पसीना आने आदि के रूप में शारीरिक लक्षण पैदा करता है। कभी-कभी साधक के आसन पर बैठते ही चित्त का प्रबल चांचल्य उसे बैठने ही नहीं देता, और अस्थिर कर डालता है। ध्यान और जप हमारे समग्र अशुद्धमन को चुनौती से लगते हैं और वह विद्रोह कर बैठता है। बिना कारण हाथ पैर हिलाना आदि भी चित्त की चंचलता के लक्षण हैं।

श्वास-प्रश्वास—असन्तुलित, जोर-जोर से सांस का चलना भी चित्त की चंचलता, घबराहट, भावनाओं के असन्तुलन का परिणाम है।

इस सूत्र में वर्णित चारों उपविक्षेप मानसिक रोग के लक्षण हैं—जिसे न्यूरोसिस कहते हैं। अर्जुन की स्थिति इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। युद्ध में लड़ मरने के लिए एकत्रित अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर वह मोह, संशय एवं शोकग्रस्त हो गया था। परिणाम हुआ दुःख, नैराश्य-हाथपाँव का कांपना, मुँह का सूखना एवं पसीना आना। यहाँ

तक कि गांडीव उसके हाथ से गिर गया और वह खड़ा नहीं रह सका। जब अर्जुन जैसा नरश्रेष्ठ, महान योद्धा एवं ज्ञान का उत्तम अधिकारी इन विक्षेपों का शिकार हो सकता है तो हम सामान्य साधक किस खेत की मूली हैं। लगभग सभी साधक किसी न किसी मात्रा में दौर्मनस्यादि के शिकार होते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें भगवान श्री कृष्ण के कथन को याद रखना चाहिए: "क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ।" हे साधक क्लीवता को प्राप्त मत होओ। बाधाओं, कठिनाइयों एवं असफलताओं से निराश कभी नहीं होना चाहिए। चाहे हजार बार फिसले, सैकड़ों बार पतित हो, तो भी पुनः उठ खड़ा होकर साधना में लग जाना चाहिए।

प्रसंगतः यह उल्लेख किया जा सकता है कि योग मनोविज्ञान में मानसिक विकृतियों; एवं मनोविकारों का इतना अधिक वर्णन नहीं किया गया है, जितना पाश्चात्य मनोविज्ञान में। फ्रायड युंग, एडलर आदि ने मानसिक रोगों के कारणों, लक्षणों एवं उपचार का विस्तार से अध्ययन किया है। यहाँ केवल इतना उल्लेख करना मात्र पर्याप्त होगा कि साधना की पहली शर्त एक स्वस्थ मस्तिष्क है। हम जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में, अपनी प्रतिक्रियाओं में एवं सामाजिक व्यवहार में पहले सामान्य तो होवें। तब साधना प्रारंभ की जा सकती है। दुर्भाग्यवश ऐसे स्वस्थमन अत्यन्त दुर्लभ हैं।

माण्डूक्य कारिका में वर्णित अन्तराय :—

गौडपादाचार्य कृत अद्वैत वेदान्त के ग्रंथ माण्डूक्य कारिका में साधन पथ के चार अन्तरायों तथा उन्हें दूर करने के उपायों का वर्णन है।

उपायेन निगृहणीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः।
सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामो लयस्तथा॥ ३-४२।

दुःखं सर्वमनुस्मृत्य काम भोगान्निवर्तयेत्।
अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तुपश्यति॥ ३-४३॥

लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः।
सकलायं विजनीयात्समप्राप्तं न चालयेत॥ ३-४४॥

नाऽस्वादयेत्सुखं तत्र निस्संगः प्रज्ञया भवेत।
निश्चलं निश्चरच्चित्तमेकी कुर्यात्प्रयत्नतः॥ ३-४५॥

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्तं पुनः।
अनिग नमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा॥ ३-४६॥

अर्थात्

काम्य और भोग विषय से विक्षिप्त होने पर मन को उपाय पूर्वक संयत रखो। सुषुप्ति अथवा लय में मन के प्रसन्नता प्राप्त होने पर उसे भी (प्रयत्नपूर्वक) संयत करो क्योंकि काम भोग की तरह लय भी अनर्थकारी है। समस्त द्वैत वस्तु ही दुःखमय है, ऐसा निरन्तर स्मरण करके मनको काम भोग से निवर्तित करो। समस्त पदार्थ स्वरूपतः अजन्मा ब्रह्म है, ऐसा जानकर जात द्वैत पदार्थों को योगी नहीं देखते। मन के लय प्राप्त होने पर उसे प्रबुद्ध करो। कामभोग से विक्षिप्त होने पर उसके स्वरूप को जानो और ब्रह्म में समभाव प्राप्त होने पर और चंचल न करो। उस समप्राप्ति में जो सुख प्राप्त हो, उसका अस्वादन न करो। बल्कि विवेक द्वारा उससे निःसंग होओ। उस चित्त को प्रयत्न पूर्वक आत्मा के साथ निश्चल एवं निश्चर करो। मन जब सुषुप्ति में लीन नहीं होता और विक्षिप्त भी नहीं होता, तथा निश्चल एवं विषय प्रकाश से शून्य होता है तब वह ब्रह्मण भाव को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त वर्णन में योग के चार व्यवधानों का वर्णन किया गया है: लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद।

(१) **लय** मन को निरुद्ध करने, चित्त वृत्ति रहित करने के प्रयास में कभी-कभी मन लय, निद्रा की तमोगुणी अवस्था में चला जाता है। ऐसे में उसे उसी समय जगाना चाहिए। आसन से उठकर

चहल कदमी करना, आँख खोलकर ध्यान करना अथवा स्वाध्याय इसके उपाय हैं। असमय, ध्यान के समय निद्रा के कुछ कारण हैं यथा निद्रा की असमाप्ति, अजीर्णता, अधिक भोजन तथा अत्यधिक परिश्रम। इन कारणों को सावधानी पूर्वक दूर रखने का सुझाव शास्त्र हमें देते हैं। निद्रा को पूरी कर लेना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का निद्रा का काल अलग-अलग होता है। साधन-जीवन के प्रारम्भ में प्रयत्न पूर्वक यह काल कम किया जा सकता है। आसानी से पचने वाला भोजन कम मात्रा में खाने से भी शरीर हल्का रहता है और निद्रा नहीं आती। अधिक परिश्रम करने से थकान आ जाने से भी निद्रा आ जाती है। अतः अल्प परिश्रम करें। लेकिन शारीरिक व्यायाम या श्रम का पूरा त्याग भी उचित नहीं है।

(२) **विक्षेप** लय से निवारित होने पर भी प्रति दिन के जागरण कालीन अभ्यास वश मन काम्य या भोग्य विषय के कारण विक्षिप्त या चंचल हो सकता है। वर्षों से दिन के जिन प्रहरों में हम सांसारिक कार्य करने के अभ्यस्त हो चुके हैं, उस समय मन स्वाभाविक रूप से चंचल हो जाता है। इसी तरह प्रातः या सायंकाल जिस समय हम प्रतिदिन ध्यान करते हैं वह काल उपस्थित होते ही मन अपने आप शान्त हो जाता है। लेकिन यदि किसी दिन हम सांसारिक कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहें, मन यदि दिन भर बहुत बहिर्मुखी बना रहे, तो सायंकाल ध्यान के निर्धारित समय में भी वह चंचल ही बना रहेगा। ऐसे में मन को पुनः पुनः प्रयत्न द्वारा प्रशान्त करना पड़ता है। जिन-जिन भोग पदार्थों के आकर्षण अथवा पूर्वानुभव की स्मृति के कारण मन विक्षिप्त हो, उस विषय में विचारशील व्यक्ति उन सभी दुःखों का चिन्तन करे जिनका वर्णन शास्त्रों में किया गया है। मन को बार-बार यह समझाया जाय कि चिन्तन के लिए अद्वितीय ब्रह्म अथवा इष्ट के अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं। अन्य समस्त वस्तुएँ अनित्य एवं दुःखका कारण हैं।

साधना के लिए एक शान्त मनः स्थिति आवश्यक है। अत्यधिक भावुक एवं थोड़ी थोड़ी बातों में उत्तेजित हो जाने वाले, अथवा जिनके दिमाग में बहुत सी योजनाएँ घूमती रहती हैं तथा जो बहुत बातूनी स्वभाव के हैं उन्हें एकाएक लम्बे समय तक ध्यान करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। ऐसे में बलपूर्वक विक्षिप्त मन को निरुद्ध करने से मानसिक तनाव की वृद्धि एवं मनोविकार की संभावना होती है।

(३) **कषाय** - कभी कभी मन लयावस्था से प्रबोधित एवं भोग्य वस्तुओं के द्वारा विक्षेप से निवारित होनेपर भी मध्यवर्ती एक प्रकार की जड़ता को प्राप्त होता है। यह कषाय है जो चित्त का एक तीव्र दोष है। इसका कारण होता है तीव्र राग-द्वेषादि का संस्कार। ऐसी स्थिति में मन लयविक्षेप रहित समाहित की तरह किन्तु दुःखैकाग्रता में बना रहता है। ऐसी स्थिति को दूर करना कठिन है, क्योंकि यह गहरे संस्कारों के कारण होती है। विचार पूर्वक इसकी परीक्षा कर इसे समाधि से भिन्न अवस्था जानना ही पर्याप्त है।

कभी कभी थोड़ी प्रगति करने के बाद साधक को एक प्रकार की रिक्तता अथवा नीरसता का अनुभव होता है: बहुत दिनों तक अच्छा ध्यान हो रहा था; अचानक ध्यान में रुचि ही समाप्त हो जाती है, पहले ध्यान में इष्ट का रूप स्पष्ट दिखाई देता था तथा बहुत आनन्द आता था, अब वह आता ही नहीं। ऐसा लगता है मानो प्रभु से सम्पर्क-सूत्र टूट गया है, तादात्म्य हो ही नहीं पा रहा है और तब साधक को तीव्र वेदना होती है। ऐसे में यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि मन के ध्यान में असमर्थ होने पर भी अन्तरात्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य बना हुआ है, तथा प्रभु के रूप की कल्पना में असमर्थ होने पर भी

कोई क्षति साधक की नहीं हुई है। इन क्षणों में मन मानो और अधिक चढ़ाई के लिए शक्ति बटोरता रहता है। अतः निराश हुए बिना अपने ध्यान-जप में पूरे उत्साह के साथ लगे रहना चाहिए।

संसार के सुखभोगों में निरत व्यक्ति जब साधना की ओर मुड़ता है तो अनिवार्य रूप से उसे विषय भोगों से अपने मन को हटाना पड़ता है। उसे प्रयत्नपूर्वक शुभविचारों को मन में स्थान देना पड़ता है, और तब एक ऐसी अन्तरिम स्थिति आती है, जब मन न तो पूर्ववत संसार की ओर विषय भोगों को ओर जा पाता है, और न ही परमात्मा में ही टिक पाता है। तब मन एकदम अस्थिर हो जाता है। संसार में रहना, और बिना किसी निर्दिष्ट केन्द्र बिन्दु, मानसिक आधार के अत्यन्त कष्टप्रद होता है। साधक कभी कभी अपने को अत्यन्त अकेला महसूस करता है। सभी सांसारिक आसक्तियाँ तोड़ दीं लेकिन प्रभु से आसक्त नहीं हुए। कैसी विषम स्थिति है! न तो ध्यान होता है, न विषय-भोग। जीवन, सामाजिक व्यवहार दैनन्दिन क्रिया कलाप आदि अस्थिर-अनिश्चित हो जाते हैं। यह एक अनिवार्य व्यवधान है। कुछ साधक इस पर विजय पाने में असमर्थ हो अपने पूर्व के संसारी जीवन में लौट जाते हैं, कुछ दूसरे दीर्घ-काल तक अनिश्चितता की स्थितिमें बने रहते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि जितनी शीघ्रता से हो, इस अनिश्चितता को पार कर निश्चित स्थिति प्राप्त की जाय। इसके लिए साधना में ढील देने अथवा छोड़ देने के बदले उसे और अधिक करना चाहिए। स्वाध्याय एवं सत्संग भी इस स्थिति में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। यम, नियम एवं नैतिक जीवन का कड़ाई से पालन इस स्थिति में विशेष रूप से आवश्यक होता है।

(४) **रसास्वाद** भगवच्चिन्तन में एक विशेष प्रकार का सुख प्राप्त होता है। और समाधि में ब्रह्मानुभूति के आनन्द का तो कहना ही क्या! वह तो "सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम्" होता है। लेकिन इसके विषय में भी माण्डूक्य कारिकाकार कहते हैं कि "नास्वादयेत् सुखं तत्र" अर्थात् उस सुख का आस्वादन न करे। इस सुख से भी साधक को अनासक्त होना चाहिए। उसका स्मरण पूर्वक अनुभव जो समाधि से व्युत्थान का कारण है, का यहाँ निषेध किया गया है। समाधि से व्युत्थान काल में 'मैंने उस अवस्था में महान सुख का अनुभव किया था, ऐसा स्मरण नहीं करना चाहिए। सूक्ष्म बुद्धि एवं विवेक द्वारा इसका त्याग करना चाहिए।

सामान्य प्रारंभिक साधक के लिए उपर्युक्त रसास्वाद रूप व्यवधान का कोई महत्व न भी हो तो भी उसे यह याद रखना चाहिए कि जिस प्रकार विषयों के आस्वादन में रसासक्ति बन्धन का कारण है, उसी प्रकार साधना में प्राप्त सुख भी बन्धन कारक होता है गीता में भगवान कहते हैं कि सत्वगुण सुख और ज्ञान में आसक्ति पैदाकर जीव को बाँधता है.

तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥१५;६॥

(अगले अंक में समाप्य)

भारतीय नारी : पाश्चात्य सम्पर्क

—डॉ० आरती श्रीवास्तव
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

खबर लगते ही कि मेरे बचपन की सहपाठिका दस साल बाद पुनः इस शहर में आयी है, मैं अपने आप को रोक न सकी और निकल पड़ी उससे मिलने। दरवाजे पर दस्तक देते ही एक गम्भीर किन्तु अधेड़ उम्र की महिला से साक्षात्कार हुआ और हम दोनों ही एक दूसरे के लिए प्रश्न चिह्न बन कर रह गये। मैंने साहस कर पूछा—'क्या अलका घर में है'? परिचित-सा स्वर सुनते ही तीर की भाँति छूटती हुई अलका आयी और मुझसे लिपट गयी। कुछ अजीब ढंग से वह मुझे निरख रही थी और शायद मैं भी.....। 'सुना है आजकल तू नौकरी कर रही है'—कुछ गंभीर होकर अलका ने मुझसे कहा। हंसते हुए मैंने पूछा—'तू आजकल क्या कर रही है!' एकाएक जैसे वह फट पड़ी—'क्या हमसे केवल यही हो सकेगा? क्या विधाता ने हमारा निर्माण सिर्फ इसीलिए किया है?' आटे से सने हुए हाथ की ओर इशारा करते हुए अलका जैसे तिलमिला उठी। शायद वह रसोई घर से निकलकर आयी थी। क्षण-भर के लिए मैं स्तब्ध सी रह गयी और फिर सोचने लगी, क्या ये प्रश्न केवल अलका के हैं या आज की भारतीय नारी के।

अगर इन प्रश्नों के उत्तर में यह कहा जाय कि ऐसा होता आया है, इसलिए ऐसा होता रहना चाहिए अर्थात् युगों से नारी का कार्य क्षेत्र घर में ही सीमित रहा है इसलिए उसे घर में ही रहना चाहिए, तो शायद अशिक्षिता नारी को इन बातों पर विश्वास हो जाय, पर शिक्षिता ने तो अपनी बुद्धि के अनुसार आज की तर्क-प्रवृत्ति को ग्रहण किया है। वह तर्क करेगी—युग की आवश्यकतानुसार हमने सदा अपने सहयोगी पुरुष का साथ दिया है। जब हमारा सहयोगी पुरुष आदिम युग का अहेरी था तो उसके लाये हुए पशु-पक्षियों को खाद्य रूप में परिवर्त्तित कर देने में ही हमारे कर्त्तव्य की इतिश्री हो जाती थी; जब हमारा सहयोगी पुरुष वेद काल का गृहस्थ था तो उसके साथ यज्ञ में भाग लेकर सहधर्मचारिणी के पद पर पहुँचना ही हमारा लक्ष्य था; जब हमारा सहयोगी पुरुष वीर-युग का युद्ध-परायण आहत था तो उसकी शिथिल और ठंढ़ी उँगलियों से छूटती हुई तलवार सँभाल लेने में ही हमारे जीवन की सार्थकता थी। आज हमारा सहयोगी पुरुष इस यंत्र युग का सबसे अधिक उलझनमय यंत्र है। उसे ठीक-ठीक समझने के लिए बाहर की दुनिया को ठीक-ठीक समझना आवश्यक है। इसीलिए आज हमें अपने कर्त्तव्य पालन के लिए अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए, अपने सहयोगी पुरुष का साथ देने के लिए बाहर भी, समाज का एक विशेष अंग तथा महत्त्वपूर्ण नागरिक बनना है।

स्पष्टतः सदियों से बंदी जीवन व्यतीत करने वाली आज की भारतीय नारी खुली हवा में आजादी की सांस लेने लगी है। शिक्षा की सुनहरी किरणें भारतीय नारी के अंधकारपूर्ण मानस को आलोकित करने में बड़ी सहायक हुई हैं। वह यह अनुभव करने लगी है कि पत्नीत्व या मातृत्व किसी भी नारी को विशिष्ट मार्ग खोजने से रोक नहीं सकता। अब भोजन गृह की परिचारिका

और गुड़िया की भाँति गृह का शृंगार मात्र बनकर वह रहना नहीं चाहती। अब तो वह भी सभ्यता की दौड़ में, जागृति की हलचल में और जीवन के कशमकश में सक्रिय भाग लेना चाहती है और ले रही है।

ऐसा क्यों न हो भला! आज की भारतीय नारी के सामने अन्य प्रगतिशील देशों की जाग्रत स्त्रियों के उदाहरण भी तो हैं। भारतीय नारी आज जीवन के मार्ग पर तीव्र गति से जो दौड़ लगा रही है, उसका एकमात्र कारण पाश्चात्य सम्पर्क ही है। यद्यपि पाश्चात्य जीवन और संस्कृति की नींव भौतिकता पर आधारित है। उसमें त्याग की नहीं, भोग और लिप्सा की भावना की प्रधानता है। संसार और मानव जीवन भोग के लिए है, इसलिए इस जीवन में जितनी भी अधिक वस्तुओं का आनन्द प्राप्त किया जा सके, कर लिया जाय—यही पाश्चात्य जीवन और संस्कृति का एकमात्र लक्ष्य है। जहाँ तक पाश्चात्य स्त्रियों का प्रश्न है, तो पुरुष के समान ही उसका भी अधिकार है, यह बात पाश्चात्य स्त्री के मन में निरन्तर एक तूफान-सी उठा करती है। किसी भी क्षेत्र में नारी पुरुष से पीछे नहीं रहती है। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की भावना से ही वह प्रेरित होकर समाज और देश के विभिन्न क्षेत्रों में काम करती है। इसी संघर्ष के परिणाम स्वरूप पाश्चात्य देशों में ऐसे कानूनों की अधिकता है जिनकी ओट लेकर स्त्री अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य को सुरक्षित रखती है। अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए उसने देशव्यापी आंदोलन करके उन कानूनों का निर्माण कराया है।

इस पाश्चात्य सम्पर्क ने आज भारतीय नारी को जहाँ जीवन और जागृति के साँचे में ढाला है वहीं उसने अपनी उपभोगमूलक संस्कृति का विष भी उसके मन में घोल दिया है! परिणाम स्वरूप प्रेम और त्याग की जगह भोग और लिप्सा लेती जा रही है। एक ओर इस सम्पर्क से भारतीय स्त्रियों के मन में शिक्षा की अभिरुचि जाग्रत हुई है तथा उनके मन के भीतर से वह भावना दूर हुई है जिसके कारण वह अपने को असमर्थ और निराश्रित समझती थी, वहीं दूसरी ओर इस सम्पर्क से स्त्रियों में स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता की वृद्धि हुई है तथा गृह-कार्यों के प्रति उपेक्षा और उदासीनता का भाव जाग्रत हुआ है। पाश्चात्य नारी की भाँति यद्यपि वह भी आज स्वातंत्र्य के अधिकार के प्रश्नों को लेकर सामने आ गयी है। किन्तु इन कानूनों और उसके व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की भावना से जीवन में सुख और शांति की सृष्टि हो रही है या नहीं इस ओर दृष्टिपात करना उसका काम नहीं है। आज तो हमें केवल इस बात से संतोष है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम पुरुष की प्रतिद्वंद्विता कर रही हैं।

इतना ही नहीं, पाश्चात्य सम्पर्क ने जहाँ भारतीय नारी के अंतर को आंदोलित किया है, वहाँ वेश-भूषा और खान-पान पर भी उसने प्रभाव डाला है। आज वैसी स्त्रियों की कमी नहीं जो पाश्चात्य वेश-भूषा को धारण करने में गौरव का अनुभव करती हैं। जिन्हें हम नयी सभ्यता की स्त्रियाँ कहते हैं, उनके खान-पान और रहन-सहन के ढंग पर भी इस सम्पर्क ने प्रभाव डाला है। आज यह प्रभाव कहीं-कहीं इतना अधिक हो गया है कि उनमें भारतीयता विलुप्त-सी हो गयी है।

पाश्चात्य सम्पर्क से निःसृत जागृति के परिणाम स्वरूप भारतीय नारी, जीवन के विविध क्षेत्रों में उन्नति अवश्य कर रही है किंतु भारत की अपनी भी कोई संस्कृति है, उसके अपने भी आचार व्यवहार हैं जिनके कारण वह अन्य देशों का सिरमौर बना हुआ है। इस ओर हमारी दृष्टि जरा भी नहीं। फलतः भारत में जो राष्ट्रीयता

जन्म ले रही है उसकी नींव अधिक दुर्बल ही दिखाई पड़ रही है।

कितना अच्छा होता यदि भारतीय नारी प्रेम और सहयोग की भावना को लेकर कदम से कदम मिलाकर चलती—इस भान के साथ कि हमारा शील ही भारत का गौरव है। ऐसा नहीं कि देवियों को शिक्षा की जरूरत नहीं है। है, और पुरुषों से अधिक। लेकिन वह विद्या और वह शक्ति नहीं जिससे पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन ही तबाह हो जाय, संसार मरुस्थल बन जाय। हमारी विद्या और हमारा अधिकार उच्छृंखलता और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है। इसी कारण यह मातृ-शक्ति वंदनीय है। स्त्री शिक्षा के संबंध में स्वामी विवेकानन्द के कितने उन्नत विचार हैं—

"पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षा दो, उन्हें उनकी स्थिति पर छोड़ दो। उनकी समस्याएँ बहुत सी हैं और गंभीर हैं पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है जो, जादू भरे शब्द 'शिक्षा' से हल न की जा सकती हो ?"[1] पुनः वे कहते हैं—"स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगी तभी तो उनकी संतानों द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और देश में विद्या, ज्ञान, भक्ति और शक्ति जाग उठेगा।"[2]

अतः हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र-निर्माण हो, मानसिक-शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो, किंतु ये सारी शिक्षाएँ परम्परागत संस्कृति और आदर्श के आलोक में हों। १९ वीं सदी के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के शब्दों में—"जिस भाँति अँग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम-काज सम्भालती हैं, अपनी संतान को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और देश की संस्कृति, संस्कार, आदर्श, संपत्ति-विपत्ति को समझती हैं और उनमें सहायता देती हैं, इतने समुन्नत मनुष्य-जीवन को व्यर्थ गृहदास्य और कलह में नहीं खोतीं, उसी भाँति हमारी गृहदेवी भी वर्त्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें, यही लालसा है।"

अतः भारतीय संस्कृति, संस्कार और आदर्श भारतीय नारी के हृदय में सर्वोपरि रहे, जिससे वे इतनी दृढ़चरित्र बन जायें कि वे चाहे विवाहिता हों या अविवाहिता जीवन की हर अवस्था में अपने सतीत्व से तिल भर भी डिगने की अपेक्षा, जीवन की नीडर होकर आहुति दे दें। स्वामीजी का कथन है 'भारतीय नारियों से सीता के चरण-चिह्नों का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होगी, यही एकमात्र पथ है। हमारी नारियों को आधुनिक भावों में रँगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं, यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी, तो वे सब असफल होंगे, जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं।[3] धर्म शिक्षा, चरित्र-गठन तथा ब्रह्मचर्य-पालन इन्हीं के लिए तो शिक्षा की आवश्यकता है। देश की स्त्रियों का जीवन इस प्रकार गठित हो जाने पर ही इस देश में सीता, सावित्री, गार्गी का फिर से आविर्भाव हो सकेगा।[4]

---

१. विवेकानन्द साहित्यः प्रथम खण्ड, पृष्ठ सं० २९७
२. वही, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ सं. २६८
३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ५, पृष्ठ सं. १५०
४. वही, खण्ड ६, पृष्ठ सं. १८४

धारावाहिक

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

"जानते हो ! एक दिन हरीश भाई ने एक बड़ी सुन्दर बात कही थी।"

एक भक्त—क्या बात कही थी, महाराज ?

लाटू महाराज -हरीश भाई कहता था कि उनसे चेक पास कराये बिना बैंक से भुगतान नहीं मिलता।

एक भक्त- हरीश दादा यह बात क्यों कहते थे, महाराज ? ठाकुर के नाम तो वास्तव में ही बैंक में रुपये न थे।

लाटू महाराज—हाँ ! तुम लोग तो केवल रुपयों के बैंक की बात जानते हो—परन्तु कृपा का भी बैंक होता है, मालूम है ? बीच-बीच में पृथ्वी पर ऐसे साधु-सद्गुरु आते रहते हैं, जिनकी कृपा पाये बिना सिद्धि नहीं मिलती; हरीश भाई उन्हें उसी श्रेणी का साधु मानता था। जिस प्रकार बैंक में रुपये जमा रखते हैं और उसी के आधार पर चेक काटते हैं, उसी प्रकार ठाकुर के कृपा-बैंक में भी साधकों की सारी साधनाएँ जमा थीं—इस बार वे स्वयं ही आकर उसका सूद दे गये। (अर्थात् उन्होंने अपने अन्तरंग भक्तों पर कृपा की।)

एक भक्त। 'साधकों की सारी साधनाएँ जमा थीं' इन बातों का तात्पर्य ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। आप क्या पिछले जन्म की साधनाओं के बारे में कह रहें हैं, या इसी जन्म में दक्षिणेश्वर में की गयी साधनाओं के बारे में ?

लाटू महाराज—अरे। साधना क्या एक ही जन्म में हो जाती है। जानते हो, भगवान विष्णु का दर्शन करने के बाद बालक ध्रुव के मन में बड़ा अहंकार हुआ था ; मन ही मन सोचने लगे कि वाह इतनी सी साधना में ही भगवान की प्राप्ति हो जाती है ? उसी समय देवर्षि नारद आ पहुँचे और उन्हें साथ लेकर टहलने को गये। घूमते घूमते वे एक ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ से एक ऊँचा पहाड़ दीख रहा था ? बालक ने देवर्षि नारद से पूछा—'वह क्या है ?' इस पर देवर्षि नारद ने कहा—'नहीं जानते ?—वह हड्डी का एक पहाड़ है। तुम जितनी बार यहाँ (पृथ्वी पर) आना जाना कर रहे हो, उतनी बार की हड्डियाँ वहाँ इकट्ठी की हुई हैं।' यह बात सुनकर बालक ने क्या कहा जानते हो ?—'मुझे इतनी बार यहाँ आना पड़ा है !' इतना सब देखने के बाद ही ध्रुव महाराज का अहंकार दूर हुआ। इसलिए तो कहता हूँ कि साधना एक जन्म की चीज नहीं है। जिस जन्म में जितनी साधना करोगे उतनी जमा रहेगी। जब बहुत सा जमा हो जायगा तो मूल तो मिलेगा ही, पर साथ में सूद भी मिलेगा।

एक भक्त—(विस्मयपूर्वक) सूद भी मिलेगा ?

लाटू महाराज—हाँ, सूद भी मिलेगा। साधु-सद्गुरु की कृपा मिलेगी। ऐसा सूद मिलने पर साधक को बड़ा आनन्द होता है, समझे ? तब वे लोग असल (मूल) को वसूल करने की साधना में लग जाते हैं। ईश्वर-दर्शन पर ही असल वसूल हो जाता है। उसके पहले असल नहीं मिलता।

एक भक्त—यह तो देखता हूँ बिल्कुल इन्श्योरेन्स (बीमा) जैसा है। 'लाइफ पालिसी' है, 'एन्डोमेण्ट' है, फिर बीच-बीच में 'बोनस-पेमेण्ट' भी है।

भक्त की बात सुनकर लाटू महाराज हँस पड़े।

"एक बार ठाकुर हम लोगों को साथ लेकर भद्रकाली का दर्शन करने गये थे। चार नावों में खूब धूमधाम के साथ जाना हुआ था, समझे ? साथ में खोल करताल सिंगा आदि सब था। हम लोगों का हरिनाम सुनकर नदी के उस पार लोगों की भीड़ जमा हो गयी थी; लोग डलिया भर-भर कर बतासे लुटाने लगे। वहाँ भद्रेश्वर में हम सबका शिबु आचार्य के घर जाना हुआ था। वहाँ पर एक पण्डित ने ऐसा व्यर्थ का तर्क शुरू कर दिया कि लोगों के मन में संशय आ गया। यह देखकर उन्होंने (ठाकुर ने) कहा—'जानते हो ! कितनी तपस्या के फलस्वरूप भगवान में विश्वास होता है, और तुम पण्डित होकर भगवान के प्रति संशय पैदा कर रहे हो ! यह तुम्हारी कैसी पण्डिती विद्या है जी ?' यह सुनकर पण्डित ने कहा—'नहीं, नहीं, मैं तो हँसी कर रहा था' ठाकुर समझ गये कि पण्डित अब भी चालाकी कर रहा है। इसीलिए अचानक उसका शरीर छूकर बोले—'भीतर तो बिल्कुल शुष्क काठ हो गया है, जी ! यह जन्म तो तुम्हारा वृथा ही गया, इतने शास्त्र पढ़कर केवल कपटता ही सीखी ?' इस पर पण्डित हकलाते हुए सभा छोड़कर चला गया। जानते हो ! वे शुष्क पण्डितों को इसी तरह नियंत्रण में लाते थे।" इसके पश्चात् लाटू महाराज ने इन्देश के गौरी पण्डित के साथ ठाकुर के वार्तालाप का प्रसंग कहा था। वह प्रसंग 'श्रीरामकृष्ण-लीला प्रसंग' में वर्णित हुआ है, अतः यहाँ पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

"जानते हो ! एक बार दक्षिणेश्वर में एक लड़के ने आत्महत्या कर ली थी; उस समय ठाकुर ने हमलोगों से कहा था—'देख ! आत्महत्या महापाप है। उस पाप का प्रायश्चित्त बड़ा ही कठिन है।" यह बात सुनने के पश्चात् एक भक्त ने लाटू महाराज से पूछा था—'महाराज ! शास्त्र में तो किसी-किसी अवस्था में आत्मबलि देने की व्यवस्था है; जो लोग उस व्यवस्था के अनुसार चलते हैं, उन्हें भी क्या बड़ा कठोर, प्रायश्चित्त करना पड़ता है ?'

लाटू महाराज—देखो ! वे कहते थे कि ज्ञानलाभ के पश्चात् इच्छापूर्वक देहपात करने से भी आत्म-हत्या का पाप नहीं लगता।"

एक भक्त—और जो लोग ज्ञानलाभ के पूर्व ही देहपात कर देते हैं, उनकी क्या गति होती है महाराज ?

लाटू महाराज—उन्हें अनेक दिनों तक कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ता है। उनका दुर्दशा का अन्त नहीं रहता। (जिस भक्त ने यह प्रश्न किया था उसके एक पुत्र ने यौवन में ही आत्महत्या कर ली थी। लाटू महाराज ने उसे गया जाकर लड़के के लिए पिण्डदान कर आने का निर्देश दिया।)

"एक बार रामबाबू बड़े बीमार पड़ गये थे। ठाकुर के ऊपर रामबाबू का बड़ा ही दृढ़ विश्वास था और वे डॉक्टर-वैद्य की दवा नहीं सेवन करना चाहते थे। एक दिन वे उनके घर में जाकर बोले—'राम ! यह सब क्या सुन रहा हूँ जी, तुम डॉक्टर-वैद्य लोगों की दवा नहीं लेना चाहते ?

यह तो उचित नहीं। रोग होने पर चिकित्सक को दिखाना चाहिए और तुम उनकी बात नहीं मानते !' इस पर राम बाबू ने क्या कहा था जानते हो ?—'जिनकी कृपा से मेरी भवव्याधि दूर हो गयी, उनसे बड़ा वैद्य तो मैं और किसी को मानने का नहीं। आपका चरणामृत ही मेरे इस रोग को दूर कर देगा, इससे बड़ी औषधि मेरे लिए दूसरी कोई नहीं है।' यह बात सुनकर ठाकुर हँसने लगे। सामने ही नित्यगोपाल और तारक बाबू को देखकर उन्होंने कहा—'राम को तो भाई, मैं समझा नहीं पा रहा हूँ, तुम्हीं लोग बल्कि उसे थोड़ा समझाकर कहो न।' जानते हो ! उस बार वे (रामबाबू) उनका (ठाकुरका) चरणामृत पीकर ही नीरोग हो गये थे।"

"एक दिन गिरीश बाबू के लड़के को कालरा हुआ। जब डॉक्टर-वैद्य लोगों की दवा खाकर भी रोग में थोड़ा उपशम नहीं हुआ, तब गिरिश बाबू ने ठाकुर का चरणामृत लाने को आदमी भेजा। ठाकुर ने मेरे हाथों माँ का चरणामृत भेज दिया था। गिरीश बाबू का ऐसा विश्वास था कि इतनी गम्भीर अवस्था में भी डाक्टर-वैद्य से नहीं दिखाये। कुछ दिनों के भीतर ही गिरीश बाबू का पुत्र चंगा हो गया, समझे ?"

"एक दिन वे (ठाकुर) देवेन बाबू+ के घर गये। वहाँ उन्होंने बहुत-सी कुलफी बरफ खायी थी।.... उनके गले की बमारी जब शुरू हुई, तब बरफ खाने पर उनके गले की वेदना शान्त रहती थी। इसीलिए प्रथम-प्रथम खूब बरफ खाते थे। एक दिन तो उन्होंने एक लड़के को (उन्होंने बाद में बताया था वे ही शशी महाराज थे) एक पैसे की बर्फ लाने को कहा। वह लड़का पैदल चलकर दक्षिणेश्वर आया करता था। वह श्यामबजार के मोड़ से एक पैसे की बरफ खरीदकर गमछे में लपेटकर लाया था, ऐसे ढंग से लपेटकर लाया था, कि धूप में बरफ गली नहीं। यह देखकर उन्होंने (ठाकुर ने) उसे कहा था—'देख ! धूप में भी जिसके हाथ से पानी नहीं चूता, लोग उसे बड़ा कंजूस कहते हैं, परन्तु देखता हूँ कि तू तो कृपण नहीं, दाता है।"'

यह बात सुनकर एक भक्त ने पूछा था—'शशी महाराज को ठाकुर ने दाता कहा था ?"

लाटू महाराज—हाँ ! उनसे बड़ा दाता दूसरा कौन है ? शशी भाई ने तो हम सबको भिक्षा माँगकर भी खिलाया है। शशी भाई के शंख-घण्टा बजाने से ही तो हम लोंगो को दोनों समय दो मुट्ठी खाने को मिलता था। जो इतने लोगों को दोनों समय खिलाता था, उसे तुम लोग दाता नहीं तो क्या कहोगे ?

इस अध्याय में शशी महाराज की बातें यहीं समाप्त करते हैं। आगे यथास्थान शशी महाराज की बातें पुनः कही जाएँगी।

"जानते हो। उनके (ठाकुर के) गले की तकलीफ दिन पर दिन बढ़ते देखकर रामबाबू, गिरीश बाबू, मनमोहन बाबू, सुरेश बाबू, आदि ने उन्हें कलकत्ता लाने की इच्छा व्यक्त की। तब बाबूराम भाई दक्षिणेश्वर में ही रहते थे। एक दिन उन्होंने (ठाकुर ने) बाबूराम भाई से पूछा—'क्यों जी, तुम क्या कहते हो ?' बाबूराम भाई चुप रहे। वहाँ लोरेन बाबू भी थे, उन्होंने कहा—'वही अच्छा रहेगा। कलकत्ते में हम लोगों को आने-जाने में सुविधा होगी और डाक्टर-वैद्य लोगों को भी सुविधा होगी। रामदादा ठीक कह रहे हैं—आप कलकत्ता चलिए।' कलकत्ता में मकान ढूँढ़ने का उत्तरदायित्व वैकुण्ठ बाबू (श्री वैकुण्ठ नाथ सान्याल) पर आया। वे दो-चार दिनों के भीतर

श्रीयुत देवेन्द्रनाथ मजुमदार का निवास स्थान उन दिनों अहीरी टोला के नीमू गोस्वामी लेन में था।

ही बाग बाजार में एक मकान तय कर आये।'.....

इसके बाद की घटनाएँ 'ठाकुर की महासमाधि' अध्याय में बतायी गयी हैं।

यहीं पर हम लाटू महाराज के दक्षिणेश्वर-कालीन सेवक-जीवन की बातें समाप्त करते हैं। परमहंसदेव उन्हें साथ लेकर जहाँ-जहाँ गये थे, यह जितना हमारे सुनने में आया तदनुसार लिपिबद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त दक्षिणेश्वर में भी और बहुत सी घटनाएँ हुई थीं। सेवक लाटू ने उनमें से कुछ को प्रत्यक्ष देखा था और कुछ को ठाकुर के अन्तरंगों तथा भक्तों के मुख से सुना था। उन्हीं में से हम जितना संग्रह कर सके हैं, उसे यथासाध्य वर्णन करने का प्रयास किया है। हमसे अज्ञात और भी अनेक बातें हो सकती हैं। आगामी अध्याय में हम लाट महाराज के तपस्वी-जीवन की बातें लिखेंगे। (क्रमशः)

□

समाचार एवं सूचनाएँ

रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

हैदराबाद, १९ अप्रैल। रामकृष्ण मठ, डोमालगुडा, हैदराबाद के तत्त्वावधान में रविवार, १ मई, १९८८, बुद्ध पूर्णिमा, को संध्या छः बजे "श्री रामकृष्ण दर्शनम्—एक चित्रात्मक संग्रहालय" का उद्घाटन स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में किया गया। संग्रहालय का उद्घाटन श्री रामकृष्ण मठ एवं मिशन के उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, मद्रास के अध्यक्ष स्वामी तपस्यानन्दजी महाराज द्वारा दीप प्रज्वलित कर किया गया। उक्त अवसर पर वैदिक मंत्रोच्चार के उपरांत स्वामी रंगनाथनन्दजी महाराज ने स्वागत-भाषण किया। प्रारंभिक भाषण गोस्वामी एशोसिएट्स, कलकत्ता संग्रहालय के कलाकार श्री रघुनाथ गोस्वामी ने किया। श्री टी० सुब्रह्मण्यम् रेड्डी द्वारा एक स्मारिका लोकार्पित की गयी। अंत में स्वामी परमार्थानन्दजी महाराज ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

अखिल भारतीय विवेकानन्द युवा महामण्डल, २१वाँ वार्षिक भारतीय युवक प्रशिक्षण शिविर, बेलघड़िया, कलकत्ता – ५६

पश्चिम बंगाल, कलकत्ता के समीप बेलघड़िया रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, कलकत्ता में अखिल भारतीय विवेकानन्द युवा महामण्डल का २१ वाँ वार्षिक भारतीय युवक प्रशिक्षण शिविर दिनांक २५ दिसम्बर १९८७ से ३० दिसम्बर १९८७ तक आयोजित किया गया।

भारत के विभिन्न राज्यों एवं पश्चिम बंगाल के विभिन्न जिलों के लगभग साढ़े सात सौ प्रशिक्षणार्थियों ने शिविर में भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान के सचिव स्वामी तत्त्वबोधानन्दजी महाराज ने २५ दिसम्बर १९८७ को शिविर का उद्घाटन किया। शिविर प्रशिक्षणार्थियों में अधिकांशतः महाविद्यालय के छात्र, विद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षकों के अतिरिक्त चिकित्सा-पदाधिकारी, अधिवक्ता, व्यवसायी, समाजसेवी तथा कृषक भी थे।

अपने उद्घाटन भाषण में स्वामी तत्त्वबोधानन्दजी ने श्री रामकृष्ण की देखरेख में नरेन्द्रनाथ

के प्रशिक्षण पर प्रकाश डाला जिसने उन्हें युगनायक के रूप में प्रतिष्ठित किया। स्वामी तत्त्वबोधानन्दजी ने कहा कि श्री रामकृष्ण अन्य धार्मिक पुरुषों की तरह कार्य नहीं कर सके क्योंकि उनका शरीर उस योग्य नहीं था। रज और तम से रहित वे पूर्णतः सत्त्व ही थे। भूतकाल में बहुत से ऐसे अवतार हुए जिनमें अवतारी पुरुषों ने हाथ में शस्त्र धारण कर दुष्टों का विनाश किया, परंतु श्री रामकृष्ण ऐसा नहीं कर सके। बल्कि उन्होंने बुरे विचारों को नष्ट करने के लिए बड़ा ही सरल तरीका सामने रखा। अंततः श्री रामकृष्ण ने अपना संपूर्ण विभव संसारहित की दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द में सन्निहित कर दिया और जीव रूपी शिव की सेवा करने का एक नया दृष्टिकोण दिया। स्वामीजी ने न केवल इस विचार का सारे विश्व में प्रचार किया बल्कि संगठन भी स्थापित किये जो कि आज इतना वृहदाकार हो गया है। किस तरह स्वामीजी अभी भी संसार के हर कोने में लोगों को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं, कुछ उदाहरणों के द्वारा उन्होंने स्पष्ट किया।

जिस संस्था की स्वामीजी ने स्थापना की उसमें हमलोग कार्यरत हैं और विवेकानन्द युवा महामण्डल भी यही कार्य कर रहा है। जैसा कि श्री रामकृष्ण ने कहा था कि विवेकानन्द 'माँ' का कार्य करेंगे मुझे विश्वास है कि महामण्डल का कार्य भी विश्वमाता का कार्य है तथा इसमें श्री रामकृष्ण, सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द का आशीर्वाद कार्य कर रहा है। हम निश्चय ही उनके आशीर्वाद से शक्ति प्राप्त करेंगे।

उद्घाटन भाषण के आरम्भ में स्वामीजी ने कहा कि मैं यहाँ आकर केवल प्रसन्न ही नहीं हूँ बल्कि मैं शक्ति का अनुभव करता हूँ, इस संस्था में आकर। निश्चित रूप से यह स्वामी विवेकानन्द की शक्ति है।

उद्घाटन समारोह में शिविर को प्रोफेसर तारापद चाटोपाध्याय ने संस्कृत में स्वामी पूर्णानन्दजी ने हिन्दी में, श्रीदिगम्बर पात्र ने उड़िया में, स्वामी अमलानन्दजी ने बंगला में एवम् स्वामी स्मरणानन्दजी ने अंग्रेजी में संबोधित किया।

२६ दिसम्बर के सायंकाल, स्वामी सत्यरूपानन्दजी ने 'विवेकानन्द का नवयुवकों को आह्वान' विषय पर हिन्दी में प्रकाश डाला। क्रमानुसार सायंकाल में डा० नीरद बरन चक्रवर्ती (विभागाध्यक्ष: दर्शनशास्त्र, प्रेसीडेन्सी कॉलेज, कलकत्ता) ने अंग्रेजी में, राष्ट्रीय युग्मन पर, डा० के० पी० सेन शर्मा (यादवपुर विश्वविद्यालय) ने बंगला में विवेकानन्द के विचारों पर, और स्वामी स्मरणानन्दजी (सचिव, रामकृष्ण मिशन सारदापीठ, बेलुड़) ने बंगला में 'भारत की आध्यात्मिक विरासत' पर क्रमशः २७, २८ और २९ दिसम्बर को संबोधित किया।

शिविर में एक आकर्षक प्रदर्शनी, स्वामी विवेकानन्दके जीवन एवं उपदेशों परआधारित-मिट्टी की प्रतिमाओं द्वारा लगायी गयी। शिविर की पुस्तक प्रदर्शनी में श्री रामकृष्ण विवेकानन्द और वेदांत साहित्य तथा विभिन्न महामंडलों के प्रकाशन आगन्तुकों के लिए मुख्य आकर्षण थे। विशेषतः महामंडल द्वारा प्रकाशित पुस्तकें।

२९ दिसम्बर को कलकत्ता के केन्द्रीय रक्त कोष बैंक में प्रशिक्षणार्थियों ने रक्तदान दिया।

शिविर के समापन दिवस ३० दिसम्बर को प्रशिक्षणार्थियों द्वारा एक सुन्दर झाँकी निकाली गयी जिसने स्वामीजी के लेखों, उद्धरणों पर आधारित नारे लगाते हुए बेलघड़िया की गलियों का परिभ्रमण किया।

३० दिसम्बर की शाम को आयोजित विदाई समारोह में स्वामी अमलानन्द ने अध्यक्षता की एवम् स्वामी रामानन्द मुख्य अतिथि थे।

कुछ अवश्य संग्राह्य जीवनी-ग्रन्थ

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन भागों में)	स्वामी सारदानन्द	प्रथम भाग—रु २०.००
		द्वितीय भाग—रु. २२.००
		तृतीय भाग रु. १७.००
श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ३.००
माँ सारदा	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. १७.००
श्री सारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ३.००
विवेकानन्द-चरित	—सत्येन्द्रनाथ मजूमदार	—रु. २०.००
स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ३.००
श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका	—स्वामी गम्भीरानन्द	प्रथम भाग—रु. २८.००
स्वामी शिवानन्द	—स्वामी शिवतत्वानन्द	—रु. ६.००
स्वामी विज्ञानानन्द	—स्वामी विश्वाश्रयानन्द	—रु. ३.००
साधू नागमहाशय	—शरच्चन्द्र चक्रवर्ती	—रु. ६.५०
आचार्य शंकर	—स्वामी अपूर्वानन्द	—रु. ६.५०

अधिक जानकारी के लिए लिखें—

रामकृष्ण मठ,

(प्रकाशन विभाग)

धन्तोली, नागपुर—440 012

"We are responsible fo. what we are, and whatever we wish ourselves to be; we have the power to make ourselves."
—**Swami Vivekananda**

With Best Compliments From :

JAYANTI METALS

MANUFACTURERS OF VARIOUS TYPES OF METALS CONTAINERS

C/O **Shree Baidyanath Ayurved Bhawan (Pvt.) Ltd.**

Baidyanath Bhawan Road, PATNA—800 001

However various the fashions of his worship be.....yet it is one God who is worshipped under so many names, in all these ways.
—**Sri Ramakrishna**

With Best Compliments From :

Arun Metal Industries

MANUFACTURER OF SUPERIOR QUALITY METAL CONTAINERS

Standard Mercantile Compound

OPP. : S. B. I. KANKAR BAGH ROAD

PATNA—800 020

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं १०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८३ अंक— ६ १९८८

विवेक वाणी

भारतीय जीवन-रचना का यही प्रतिपाद्य विषय है, उसके अनन्त संगीत का यही दायित्व है, उसके अस्तित्व का यही मेरुदण्ड है. उसके जीवन की यही आधारशिला है, उसके अस्तित्व का एकमात्र हेतु मानव जाति का आध्यात्मीकरण। अपने इस लम्बे जीवन-प्रवाह में भारत अपने इस मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुआ, चाहे तातारों का शासन रहा हो और चाहे तुर्कों का, चाहे मुगलों ने राज्य किया हो और चाहे अंग्रेजों ने।

और मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखा दे, जिसमें यहाँ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखनेवाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव रहा हो। पर भारत का कार्य आध्यात्मिक है; और यह कार्य रण-भेदी के निनाद से या सैन्यदलों के अभियानों से तो पूरा नहीं किया जा सकता। भारत का प्रभाव धरती पर सर्वदा मृदुल ओस-कणों की भाँति बरसा है, नीरव और अव्यक्त पर सर्वदा धरती के सुन्दरतम सुमनों को विकसित करनेवाला। प्रकृत्या मृदुल होने के कारण विदेशों में जाने- प्रभाविष्णु होने के लिए इसे परिस्थितियों के एक सुयोगपूर्ण संघटन की प्रतीक्षा करनी होगी; यद्यपि अपने देश की सीमा के भीतर इसकी सक्रियता कभी बन्द नहीं हुई। इसीलिए प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति जानता है कि जब कभी साम्राज्य-निर्माता तातार या ईरानी या यूनानी अथवा अरब लोग इस देश को बाह्य संसार के सम्पर्क में लाये, तभी व्यापक आध्यात्मिक प्रभाव की एक लहर यहाँ से समूचे संसार में फैल गयी। ठीक वही परिस्थितियाँ एक बार फिर आकर हमारे सम्मुख खड़ी हो गयी हैं। धरती और सागर पर अंग्रेजों का यातायात मार्ग और उस छोटे से द्वीप के निवासियों द्वारा प्रदर्शित अद्भुत शक्ति ने एक बार फिर भारत को शेष संसार के सम्पर्क में ला दिया है, और वही काम फिर से प्रारंभ हो चुका है। मेरे शब्दों पर ध्यान दो—यह तो केवल अल्प प्रारंभ मात्र है; महान सिद्धियाँ बाद में उपलब्ध होंगी ....।

— स्वामी विवेकानन्द

मूल्य : २.५०

आनन्द अल्बेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका
बालक प्रकाशन,
पटना-800004, फोन 50341

के सौजन्य से श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।